प्रकाशिका :

सन्मार्ग प्रचार समिति
केकड़ी (राजस्थान)

●

पर्यूषण पर्व : २५०१ वीर निर्वाण रजतशती महोत्सव वर्ष

प्रथम संस्करण :
प्रति १०००

卐

मूल्य
२) रु

सितंबर सन् १९७५ भाद्रपद २०३२ वि०

मुद्रक :
प्रिन्ट हाउस, अजमेर

।। श्री ।।

सन्मार्ग प्रचार समिति

★
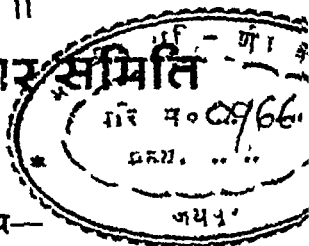
—उद्देश्य—

अविवेक पूर्ण थोथे क्रियाकाडो, सम्यक्त्व को मलिन करने वाले मिथ्यात्व के परिपोषक विधि विधानों, अपार महंगाई के युग मे धर्म के नाम पर किये जाने वाले अपव्ययो का प्रतिरोध।

साधुवेषियो और उनके समर्थक स्वार्थी पण्डितो द्वारा की ज़ाने वाली—सिद्धान्त-विरूद्ध प्ररूपणा, वीतराग धर्म-विमुख पद्धति, समाज को विशृ खल करने वाली कलह विसवाद जनक प्रवृत्ति, मिथ्या विचार और शिथिलाचार का विरोध।

गुरूडमवाद से मुक्ति दिलाकर जागृति पैदा करने वाले, जिनशासन की प्रभावना करने वाले, वीतराग मार्ग के परिपोषक, समीचीन-धर्म के उद्-वोधक, अहिंसा के प्ररूपक क्रिया कलापो का सम्यक् प्रचार।

— नियम —

वितडावाद कषाय-भावना व्यक्तिगत आक्षेपादि से दूर, शात शालीन पद्धति मे विश्वास रखनेवाला, सद्धर्म-प्रचार की भावना रखने वाला, अहिंसा और वीतराग मार्ग की रक्षा के लिये सदैव सन्नद्ध, निर्भीक और स्वस्थ विचारक कोई भी सज्जन इस समिति का सदस्य वन सकता है।

सदस्यता फीस ११) रुपये है।

—: कार्य :—

फिलहाल समिति ने सन्मार्ग प्रचारार्थ एक ग्रंथमाला प्रारभ की है जिसका नाम "श्री मिलापचन्द्र कटारिया जैन ग्रंथमाला" रखा गया है।

स्व० पडित-प्रवर मिलापचन्द्रजी सा० कटारिया, केकड़ी की अनवरत श्रुत-सेवाओ को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उनकी पुनीत स्मृति मे यह ग्रंथमाला स्थापित की गई है।

समिति के सदस्यो को इस ग्रंथमाला के सभी प्रकाशन विना मूल्य दिये जाने का प्रावधान है।

कोई भी सज्जन समिति के उद्देश्यो के अन्तर्गत किसी भी विषय का कोई ट्रेक्ट छपवाना चाहे तो समिति छपवा देगी।

किसी भी त्यागी और पडित द्वारा वीतराग मार्ग पर की जाने वाली कैसी भी आपत्ति-शका-उत्सूत्र प्ररूपणा आदि के निरसन के लिये कभी भी किसी सस्था समाज और व्यक्ति विशेष को आवश्यकता हो तो समिति से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं समिति हर सभव सहयोग के लिये सदैव तैयार रहेगी।

पत्र व्यवहार का पता—

(१) मिश्रीलाल कटारिया, केकडी (अजमेर)
(२) पं० दीपचन्द्र पांडिया, केकड़ी (अजमेर)

प्रस्तावना

●

मिथ्यातमः पटलभेदन कारणाय,
स्वर्गापवर्गपुर मार्ग निवोधनाय ।
तत्तत्वभावन मनाः प्रणमामि नित्य,
त्रैलोक्य मंगल कराय जिनागमाय ।।

अज्ञान तिमिर व्याप्तिमपाकृत्य यथायथ ।
जिन शासन माहात्म्य प्रकाशः स्या त्प्रभावना ।।

●

इस निबध की उपादान सामग्री करीव ७ वर्ष पहिले तैयार करली गई थी किन्तु विसर्जन-श्लोक का "ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या" यह पद बाधा उपस्थित कर रहा था अत तीन वर्ष पूर्व हस्तलिखित ग्र थो को टटोला गया तो अनेक प्रतियो मे इसकी जगह शुद्ध पाठ—"ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा" मिल गया । यह पाठ बिल्कुल सगत होने से इससे सारे निवध की पूरी एक कडी बैठ गई ।

जब यह सारी सामग्री मैंने स्थानीय विद्वान् पडित-प्रवर दीपचन्दजी पाड्या को वताई तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने इस पर एक विस्तृत निबध शीघ्र तैयार करने की मुझे प्रेरणा की । परन्तु स्वय चाहते हुए भी मैं समयाभाव से निर्बंध तैयार नही कर पाया तो उन्होने मुझे बार बार विविध प्रकार से प्रोत्साहित करना प्रारभ कर दिया ।

आखिर काललब्धि आई और यह निबध जयपुर की "महावीर जयती स्मारिका १९७५" मे प्रकाशित कराया गया ।

अभी यह 'सन्मति-सदेश' (मासिक) और जैन-सदेश (साप्ताहिक) मे भी क्रमश प्रकट हो रहा है। यह निवध अनेक स्वाध्याय शील सज्जनो को काफी पसद आया है, उन लोगो की भावना रही कि—इसे पुस्तकाकार रूप मे प्रकाशित किया जाय तो स्थायी रूप से इसका प्रचार हो सके और लोगो मे एतद्विषयक जो सम्यग्ज्ञान का अभाव होरहा है उसमे सुधार हो सके तथा इससे जो समाज मे कटुता व्याप्त है वह भी समाप्त होकर स्वच्छ वातावरण का निर्माण हो सके।

तदनुसार यह निवध कुछ परिवर्धन-परिशोधनादि के साथ पुस्तकाकार (ट्रैक्ट) रूप मे प्रकाशित किया गया है।

समाज मे इस वक्त दो पक्ष है। एक पक्ष, जिन, प्रतिष्ठा पाठ और अभिषेकपाठ आदि ग्रन्थो मे शासनदेव पूजा का कथन है उन ग्रन्थो को ही अमान्य करता आरहा है, अमान्यता मे उसकी युक्ति यह है कि—इन ग्रन्थो मे देवगति के देवो की पूजा वताई गई है जो जैनधर्म ही के विरुद्ध है। सभी शास्त्रो मे सिर्फ पचपरमेष्ठी, जिनधर्म—जिन प्रतिमा – जिनालय—जिन वाणी इन नवदेवो को ही पूज्य वताया गया है, देवगति के देवो को कही नही, उनकी पूजा तो देव-मूढता (मिथ्यात्व) वताई गई है।

इस विषय मे दूसरा पक्ष यह कहता है कि—उक्त ग्रन्थो में जैसा लिखा है वैसा ही हम मानते हैं कोई मनोक्त (मन मे आया सो) तो मानते नही है।

इस तरह दोनो अपने को सही मान रहे है और एक दूसरे को परस्पर गलत (मिथ्यात्वी) मान रहे है इस से समाज मे निरन्तर फूट वढ रही है।

हमारे विचार से इस विषय मे दोनो पक्ष यथार्थता को छू नही पाये है इसी से उलझ रहे है।

प्रथम पक्ष ग्रन्थकारो का वास्तविक अभिप्राय ज्ञात न हो पाने से तथा शास्त्र-विरुद्ध अर्थ लक्षित होने से उन ग्रन्थो को ही अमान्य कर रहा है तो दूसरा पक्ष अर्थ मे स्पष्ट शास्त्र-विरुद्धता होने पर भी उसे आगमभक्ति के लिहाज से ग्रहण कर रहा है।

शास्त्रो मे ऐसा नियम है कि—जिस विषय मे सदेह हो जाये उसे त्याग देना चाहिये जैसे-भक्ष्य पदार्थ मे अगर विष होने का सदेह हो जाये तो उसे त्यागना श्रेयस्कर है। त्यागने वाला चाहे भूखा रह जाये किन्तु खाने वाला तो भयकर दु ख ही उठाता है इस दृष्टि से प्रथम पक्ष ज्यादा गलत नही है किन्तु दूसरा पक्ष तो निश्चित गलत ठहरता है। इसके सिवा दूसरे पक्ष ने सहज विवेक को भी खो दिया है अर्थात्—किसी शास्त्र को मानने के खातिर उसने दूसरे अनेक प्राचीन-अर्वाचीन शास्त्रो का अपलाप कर दिया है—उनकी आज्ञा का लोप कर दिया है—जैसे—कोई एक रुपये के खातिर हजार रुपये बरबाद कर दे।

इस तरह दोनो पक्ष दो अलग अलग किनारो पर स्थित हो गए है दोनो ही शास्त्र-समुद्र का अवगाहन नही कर पाये है।

हमने इस निबध मे समन्वय की दृष्टि से "आर्ष सदधीत न तु विघटयेत्" (आर्ष का सधान (जोड) करना चाहिये उसका विघटन (तोड) नही करना चाहिये) इस सूत्र को आदर्श रख कर उक्त ग्रन्थो को अप्रमाण करार नही करते हुए 'शासनदेव पूजा' के वास्तविक अर्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

आशा है पाठक इससे समुचित लाभ उठायेंगे और अपने सम्यक्त्व को सुदृढ करेंगे। यह विषय श्वे० साहित्य के साथ भी इसी तरह लागू समझना चाहिये।

विद्वान् समाज के पथ-प्रदर्शक है अत: विशेषतया उनसे निवेदन है कि—वे इस निवध का मनन कर इसे हृदयगम करते हुए इसका पर्याप्त प्रचार करने की कृपा करे। इसी मे हम अपने परिश्रम की सफलता समझेंगे। इस पुस्तक मे जिन्होने किसी भी प्रकार का कुछ भी सहयोग दिया है उन सव के हम हृदय से आभारी हैं।

अगर यह निवध पाठको को पसद आया तो पचामृताभिषेक को लेकर भी जो समाज मे विसवाद व्याप्त है उसका भी इसी शैली से रहस्य उद्घाटित किया जायेगा अर्थात्—"पचामृताभिषेक-रहस्य" निवध जो प्राय. तैयार है उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

न बाह्याभ्यतरे चास्मिन्तपसि द्वादशात्मनि।
न भविष्यति नैवाभूत् स्वाध्यायेन समं तपः॥
श्रीमत्परम गभीरः स्याद्वादामोघ लाछन।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासन-जिन-शासनम्॥

•

(केकड़ी अजमेर)
आश्विन कृष्णा १
विक्रम स. २०३२
रविवार

—रतनलाल कटारिया

॥ श्री सन्मतये नम ॥

विश्व-विश्रुत श्री वीरनिर्वाण रजत शती महोत्सव के शुभावसर पर सन्मार्ग-प्रचारार्थ और जैनसंघ में परस्पर ऐक्य निर्माणार्थ :—

शासनदेव पूजा रहस्य

इति पंचमहा पुरुषाः
प्रणुता जिनधर्मवचन चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमला,
दिशतु बोधि बुधजनेष्टाम् ॥१०॥ —चैत्यभक्ति (पूज्यपाद)

अरहंत सिद्ध साहू,
तितय जिणधम्म वयण पडिमाइ ।
जिणणिलया इदिराए,
णवदेवा दिन्तु मे बोहिं ॥ —भावत्रिभंगी

अर्थात्—अरिहत, सिद्ध और आचार्य उपाध्याय साधु ये पच परमेष्ठी (सचेतन) तथा जिनधर्म, जिनवाणी, जिन प्रतिमा, जिनालय ये चार (अचेतन) इस प्रकार नवदेव माने गये हैं ।[1]

---

१. ऐसा ही मेघावीकृत धर्म सग्रह श्रावकाचार मे लिखा है, देखो-अध्याय १० (पृष्ठ ३०७) यथार्हदादय. पच ध्येया धर्मादयस्तथा । चत्वारो-देवताभ्यस्तु नवभ्यो मे नम सदा ॥१४५॥ चत्वारो देवता एते जिन धर्मो जिनागम । जिन चैत्य जिना वास आराध्या सर्वदोत्तमै ॥१४६॥

ये सब वीतराग-स्वरूप होने से पूज्य और आराध्य हैं। इनके सिवा न तो और कोई वीतराग-स्वरूप हैं और न पूज्य आराध्य हैं।

इन नवदेवो मे कोई भी देवगति (व्यतर-ज्योतिष्क-भवनवासी कल्पवासी) के देव नही हैं जबकि शासनदेव व्यंतर जाति के यक्षदेव है जो वीतराग-स्वरूप नही है, रागी द्वेषी हैं अत अपूज्य है।

पूज्यता सयम से आती है और देवगति मे सयम का सर्वथा अभाव है। कुन्दकुन्दाचार्य ने दर्शनपाहुड गाथा २६ में कहा है —

असजद न वदे गंथविहीणो वि सो ण वदिज्जो ।। अर्थात्-असयमी चाहे वह नग्न-दिगबर ही क्यो न हो वदनीय नही है। तब भला रागी द्वेषी और परिग्रही शासन देव-यक्ष कैसे पूज्य हो सकते है ? अर्थात् कदापि नही।

जैनधर्म मे रागद्वेष और इन्द्रिय विषय कषायो को जीतने वाले ही आराध्य हैं रागीद्वेषी इन्द्रिय विषय कषायो के गुलाम देवगति के देवो को आराध्य-पूज्य बताना जैन सस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है।

देवगति के देवो को महान् और पूज्य जैनेतर सप्रदायो मे माना गया है उनके शास्त्र इन देवो की विविध स्तुतियो से भरे पडे है जबकि जैनधर्म ने इन देवी देवताओ के जाल से मनुष्य को ऊपर उठा कर उसकी महान् आत्मिक मानवी शक्ति का यानि नर से नारायण तथा जन से जिन बनने की क्षमता का उसे भान कराया है। यही जैन धर्म की अन्य धर्मों से खास विशेषता है। इसी खूबी का लोप करना या इसे विकृत करना —— ने जैन धर्म को ही समाप्त करना है।

ससार के समग्र प्राणियो में मनुष्य ही सर्व श्रेष्ठ प्राणी है। जैन धर्म मे जहा देवो मे ४ गुण तक ही माने है वहा मनुष्यो मे १४ गुण (गुण-स्थान) तक माने है। शास्त्रो मे अनेक कथाये आती हैं जिनमे देवताओ द्वारा मनुष्यो की रक्षा और उनकी पूजा का वर्णन पाया जाता है। इस तरह जैनाचार्यों ने देवो को मनुष्यो का सेवक पूजक द्योतित किया है[२] मनुष्यो को देवो का सेवक-पूजक नही।

तीर्थंकरो के तपकल्याणक के प्रसंग मे शास्त्रो मे लिखा है कि भगवान् की पालकी को उठाने मे जब देवो और मनुष्यो मे विवाद उत्पन्न हो गया तो उसका निर्णय इसी बात पर हुआ कि-'जो भगवान के साथ दीक्षित होने की सयम धारण करने की क्षमता रखते हो एव भगवान् की जाति के हो यानि मानव जाति के (भूमि-गोचरी) हो वे ही पालकी उठा सकते हैं।" इसमे देव परास्त हो गये और मनुष्यो ने ही सर्व प्रथम पालकी को उठाया।

इससे देवो की अपेक्षा मनुष्य की महत्ता गुरुता और सर्व श्रेष्ठता का परिचय प्राप्त होता है।

जैन धर्म मे तो वीतराग जिनदेव को छोडकर अन्य सभी देवताओ की उपासना को देवमूढता (मिथ्यात्व) बताया है जैसा कि-स्वामी समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे लिखा है।

वरोपलिप्सयाशावान्, रागद्वेषमलीमसा।
देवता यदुपासीत, देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

---

२ चक्रवर्ती पर ३२ यक्ष चवर ढोरते हैं। देखो तिलोय पण्णत्ती अ ४ गा १३८३ चक्कीण चामराणि, जक्खा वत्तीस विक्खिवति तहा॥ एव महापुराण सर्ग ३१ श्लोक ११३ आदि

अर्थात्—किसी कामना-प्रयोजन से भी रागीद्वेषी देवो की उपासना करना देवमूढता है।

इसका कारण यह है कि-रागीद्वेषियो की उपासना रागद्वेष (ससार-दु ख) को ही बढाती है जब कि वीतराग की उपासना वीतरागता (मोक्ष-सुख) को प्राप्त कराती है। यही जैन भक्ति का उद्देश्य और सार है।

प्रश्न .—जिस तरह नव देवो मे 'जिन वचन' गुणदेव है और उसके अधिष्ठाता देव श्रुतदेव या सरस्वती देवी पूज्य रूप मे माने गये हैं उसी तरह 'जिनशासन' के अधिष्ठाता देव इन तथा कथित शासन देवो को मान लिया जाये और उन्हें पूज्य बताया जाये तो क्या बाधा है?

उत्तर —ऐसा किसी तरह संभव नही, क्योंकि ये शासन देव व्यतरजाति के यक्ष हैं[३] और इनकी उत्कृष्ट आयु करीब एक पल्योपम मात्र है अत ये गुण देव नही होने से अधिष्ठाता देव भी सभव नही है जबकि श्रुतदेव देवगति के देव नही है अत गुणदेव होने से अधिष्ठाता देव हैं और श्रुत की तरह ही इनकी आयु भी अनादि अनत है (श्री जैन शासनमनिद्यमनाद्यनन्तम्, भव्यौघ ताप शमनाय सुधा प्रवाहम् ।।) शासन देवो मे २४ यक्ष और २४ यक्षिया है जिनके सबके अलग अलग गोमुख चक्रेश्वरी आदि व्यक्ति रूप से सज्ञा नाम है जबकि 'जिन वचन' का अधिष्ठाता एक ही श्रुतदेव है और उसका व्यक्ति रूप से सज्ञा वाची नाम न होकर गुणानुरूप नाम है।

३. देखो 'पुण्याश्रव कथाकोश। पृष्ठ ३३५-तावत्सा मृत्वा व्यतर लोके नेमि-जिन शासन रक्षिका अम्बिकामिधा यक्षी भूत्वा भवप्रत्ययावाधि बोधेन देव गत्युत्पत्तिकारण विबुध्य ...... यही बात आशाधर-प्रतिष्ठा-पाठ अ ३ श्लोक १७६ मे बताई है।

शासनदेव यक्षदेव होने से सचेतन है। जिस तरह एक म्यान मे दो तलवार नही समा सकती उसी तरह यक्ष देवत्व मे जिन शासनत्व नही समा सकता। सचेतन अशुद्ध पदार्थ मे स्थापना नही हो सकती अत कोई व्यतर यक्ष कभी अधिष्ठातादेव (जिनशासन) नही बन सकता।

तिलोयपण्णत्ती (दि०) तथा निर्वाणकलिका (श्वे) प्रभृति ग्र थो में गोमुख चक्रेश्वरी आदि देवताओ को यक्ष[४] नाम से ही ससूचित किया है कही भी शासन देव नही लिखा है। देखो पद्मपुराण, अभिपेकपाठसग्रह आदि। सभी अभिषेक पाठो मे रक्षण, विघ्ननिवारण के लिए दिग्पालो (लोकपालो) का ही आह्वान किया गया है शासन देवो का कही कोई नामोल्लेख तक नही किया गया है। बाद के ग्र थो मे शासन के अधिष्ठाता रूप मे नही किन्तु शासन की रक्षा करने वाले के अर्थ मे ये शासनदेव कल्पित किये गए हैं। जैसा कि यशस्तिलक चम्पू मे सोमदेव सूरि ने लिखा है —"ता. शासनाधिरक्षार्थ कल्पिता परमागमे"।

इससे स्पष्ट है कि-ये स्वय मूर्त्तिमान "जिन-शासन" नही है ये तो शासन के रक्षक कल्पित देव है। अगर इन्हे ही वास्तविक जिन शासन मान लिया जायेगा तो फिर जैन धर्म के अधिनायक जिनेन्द्र देव नही रहकर ये देवगति के यक्षदेव अधिनायक हो जायेंगे। फिर तो वह शासन भी जिनशासन न रहकर यक्षशासन हो जायेगा।

---

४ यक्षयते पूजयति जिन इति यक्ष। जिनेन्द्र के पूजक सेवक भक्त को 'यक्ष' कहते हैं इसी से तिलोय पण्णत्ति (अ ४ गा ९३६) मे लिखा है—तित्थयराण पासे चेट्ठ ते भत्ति सजुत्ता अर्थात्—ये यक्ष तीर्थंकरो के पास मे भक्त बनकर खडे रहते हैं।

बाद के ग्रंथकारो ने इन यक्षो को 'शासनदेव' नाम अधिष्ठाता रूप मे नही प्रत्युत: जिनशासन के रक्षक रूप से दिया है। किन्तु यह भी व्यर्थ है क्योंकि पूर्वाचार्यों ने जैन-जगत (जिनशासन) के रक्षक दिग्पाल (लोकपाल) क्षेत्रपाल पहिले से ही बता रखे है तब फिर ये और नये रक्षक क्यों ईजाद किये गये ? क्या उन दिग्पाल-लोकपालादि की रक्षकता मे कोई कमी आ गई थी ? इनके सिवा तत्वार्थसूत्र अध्याय ४ के सूत्र ५ में बताया है कि—"त्रायस्त्रिंश लोकपाल वर्ज्या. व्यतर ज्योतिष्का. 'अर्थात्-व्यतर और ज्योतिष्क देवो मे त्रायस्त्रिंश (पुरोहित) और लोकपाल (रक्षक) भेद नही होते। अत ये शासन के रक्षक रूप मे भी शासनदेव (व्यतर-यक्ष) शास्त्र विरुद्ध सिद्ध होते हैं। क्षेत्रपाल, लोकपाल दिग्पाल की तरह इनका नाम भी शासनपाल रखा जाता तो ज्यादा अच्छा रहता फिर शासनाधिष्ठाता रूपक कोई प्रश्न या भ्रम ही उत्पन्न नही होता।

प्रश्न:—'जैन जयति शासनम्"[५] इस श्लोक मे जो जैन

---

५ जयतु (लोट्लकार) की जगह यहाँ जयति (लट्लकार) का प्रयोग क्यो है ? क्या जयति कोई अव्यय है ? समाधान—ऐसे प्रयोग अनेक पाये जाते हैं देखो—(१) जयति भगवान् हेमा-भोज (२) तज्जयति परज्योति (३) जयति ते जिना येषा। इनमे 'जयति' और 'जयति' अव्यय नही है किन्तु ये जयतु और जयन्तु के स्थान मे प्रयुक्त किये गये हैं। ऐसा ही एक प्रयोग पुरुषोत्तम देव कृत "त्रिकाडशेष" ग्रथ के मगलाचरण मे है-जयति सत कुशल प्रजाना। इसकी टीका मे शीलाकाचार्य ने लिखा है-'जेस्तुवन्त्वोस्तिवन्ती" इत्यनुशासनात् अन्तुस्थाने अन्ति। अर्थात् 'जि' धातु के तु और अन्तु के स्थान मे, क्रमश ति और अति भी होते हैं। यह नियम सिर्फ 'जि' धातु के ही लिये है और उसमे भी लोट्लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन और बहुवचन के लिये ही है, अन्य के लिये नही। यह व्याकरण शास्त्र का नियम है।

शासन की जय की गई है वह 'जिनशासन' नवदेवो में कौन सा देव है ? क्या वह कोई दसवा देव है ?

उत्तर :—नवदेवो से भिन्न कोई दसवां पूज्य देव नही है। शासन का एक अर्थ शास्त्र (जिनवचन) भी होता है। देखो हेमचन्द्र कृत 'अनेकार्थ सग्रह' काड ३-शासन नृपदत्तोर्व्यां शास्त्राज्ञा-लेख शास्तिषु। ४५३। सिद्ध सिद्धट्टाण ठाण मणोवम सुह उवगयाण। कुसमय विसासणं सासण जिणाणं भव जिणाण ॥१॥ सन्मति सूत्र की इस मगल-गाथा मे भी शासन शब्द का प्रयोग शास्त्र अर्थ मे ही किया गया है। ऐसा ही वसुनदि श्रावकाचार गाथा ३८७ और ३८९ मे है।

शासन और शास्त्र शब्द एक ही शास् धातु से बने है। अत यहा जिनवचन ही जिनशासन है। जिनवचन के अधिष्ठाता देव श्रुतदेव ही वस्तुतः जिनशासन देवता है, (ये मूर्ति रूप में हो चाहे शिलालेख या हस्तलिखित मुद्रित शास्त्र पुस्तक रूप मे हों पूज्य मान्य हैं[१]) इनके सिवा अन्य सब शासनदेव मिथ्या और अपूज्य हैं।

प्रश्न :—शास्त्रो मे जो श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि देवियो के नाम पाये जाते है क्या ये पूज्य गुणदेविया हैं ?

उत्तर :—जिस तरह मनुष्यो में लक्ष्मी बाई, शाति कुमारी, सरस्वती देवी, बुद्धिवल्लभ, कीर्तिधर आदि नाम पाये जाते हैं नामानुसार उनमे वे साक्षात् पूर्ण गुण नहीं हैं उसी तरह श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि नाम, देवियो मे भी पाये जाते हैं ये इन गुणो की साक्षात् मूर्तिमत अधिष्ठात्री देविया नही हैं। ये श्री ह्री आदि ६ देविया षट् कुलाचल वासिनी

[१] बारह अग गीजा दसण तिलया चरित्त वत्थ धरा, चोदह पूव्वाहरणा ठावेयव्वा य सुयदेवी ॥३९१॥ वसुनदि-श्रावकाचार

सचेतन देवियां है इसी से तत्वार्थ सूत्र अध्याय ३ सूत्र १९ मे इनकी एक पल्य मात्र आयु बताई है देखो 'तन्निवासिन्यो देव्य: श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्म्य: पल्योपमस्थितय ।"

उत्तर पुराण पर्व ६३ मे गुणभद्राचार्य ने इन्हे व्यतरिया और इन्द्र की वल्लभा बताया है। यथा-तेषामाद्येषु पट्सु स्युस्ता श्री ह्री,धृतिकीर्तय.। बुद्धि लक्ष्मीश्च शक्रस्य व्यन्तर्यो वल्लभांगना: ॥२०॥

इससे स्पष्ट है कि ये गुण देविया नही है देव-गति की व्यतरिया है अत. पूज्य नही है (इन्हे कही कही दिक्कुमारी और दिक्कन्यका भी लिखा है)

इस तरह जब इन तथाकथित शासन देवो के मूल मे ही पूरी सारी गडबड है तब इनकी पूजा की बात तो अभी दूर है वह तो किसी तरह भी समीचीन नही हो सकती। इस विषय और भी विशेष जानने के लिये हमारी पुस्तक "जैननिबध-रत्नावली" के निम्नाकित लेखो का अध्ययन कीजिये—

लेख न २८-धरणेन्द्र पद्मावती।
लेख न. ३०-प्रतिष्ठा शास्त्र और शासनदेव।
लेख न. ३२-दस दिग्पाल।
लेख न. ३३-इसे भक्ति कहे या नियोग।
लेख न. ४०-चौबीस यक्ष यक्षिया।

इनके सिवा "पद्मावती पूजा मिथ्यात्व है" नाम का हमारा ट्रेक्ट भी पढिये।

प्रश्न :—शासन के भक्त-देवता मानकर कृतज्ञता रूप मे अगर शासन देवो की पूजा की जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर .—शासन के भक्त होने से ही अगर शासन देव पूज्य माने जाये तो फिर सभी सम्यक्त्वी व्रती तिर्यंच मनुष्य भी

पूज्य हो जायेंगे किन्तु पूज्यता भक्ति से नही आती वह तो सयम से आती है और देव सयम के नितात अयोग्य है अत वे सर्वथा अपूज्य हैं। (भक्ति करना कोई अहसान नही है जो कृतज्ञता ज्ञापन की जाय। शासन देवो की जिनभक्ति मे श्रद्धा के बजाय केवल नियोग है जो उन की ड्यूटी-कर्त्तव्य है।)

प्रश्न :-जिस तरह चक्रवर्ती के परिवार का पूजन न करने पर चक्रवर्ती से सेवको को फल की प्राप्ति नही होती उसी तरह शासन देवो की पूजा किये बिना जिनेन्द्र से फल-प्राप्ति नही होती अत. शासनदेव-पूजा विधेय है।

उत्तर :-शासनदेवो को जिनेन्द्र के परिवार के बताना जिनेन्द्र को देवगति का देव (असयमी) बनाना है और शासन देवो को मनुष्यगति का सयमी मनुष्य बनाना है-यह उल्टी गगा वहाना है जो जिनेन्द्र तथा देव दोनो का ही अवर्णवाद है। ऐसे अवर्णवादो से कोई पूजा कभी विधेय नही हो सकती। जिनेन्द्र तीन लोक के स्वामी हैं और शासनदेव उनके किंकर हैं। मालिक और नौकर को एक बताना मूढता है।

प्रश्न .-जिस तरह चपरासी या अहलकार को कुछ रकम देने से सरकारी काम सिद्ध हो जाता है उसी तरह शासनदेवो को अर्घ देने से धर्म-कार्य सिद्ध हो जाता है।

उत्तर :(राज्य कर्मचारी को व्यक्तिगत रकम देना रिश्वत है। इसका देने और लेने वाला दोनो कानूनन अपराधी हैं। उसी तरह शासनदेवो को अर्घ प्रदान करना भी जैन शासन मे धार्मिक जुर्म है।)

प्रश्न .-जिन-प्रतिमा के साथ शासन-देवता, क्षत्र-पाल, नव-ग्रह, गधर्व, यक्ष, नाग, किन्नरादि की मूर्तिया भी पाई जाती है अत. ये सब देवगण पूज्य है।

उत्तर :-जिन-प्रतिमा के साथ उक्त देवताओ की मूर्तियां जिनेन्द्र के सेवक पूजक भक्त रूप मे प्रदर्शित की गई हैं। जैनेतर सप्रदायो में इन देवी-देवताओ को बहुत वडा वताया गया है जैनशास्त्रकारो ने उन्हीं देवी देवताओ को जिनेन्द्र के सेवक रूप मे प्रस्तुत कर जिनेन्द्र की महत्ता-देवाधिदेवता प्रदर्शित की है।

साथ होने से ही कोई वरावर हो जाता हो तो अनेक जिन-प्रतिमाओ के उपर कलश करते हाथी, आसन रूप मे कमल और सिह, पादपीठ मे हिरण और २४ चिन्हो के रूप मे विविध पशु पक्षी वृक्षादि अकित रहते है तो ये सव तिर्यञ्च भी पूज्य हो जायेंगे। मूर्ति पर मच्छर मक्खी भ्रमर मूषक पक्षी आदि भी आकर वैठ जाते है तो ये भी पूज्य हो जायेंगे। मालिक के पास वैठकर मालिक की पगचम्पी करने वाला नौकर भी मालिक हो जायेगा किन्तु ऐसा नही है मालिक, मालिक ही रहता है और नौकर नौकर ही रहता है। इसी तरह जिनेन्द्र के सेवक देवतागण जिनेन्द्र के पास स्थित होने से पूज्य नही हो जाते वे तो पूजक ही रहते है।

(फलो के साथ रहने वाले छिलके फलो के रक्षक और फल ही कहलाते हुए भी अनुपयोगी अग्राह्य मलरूप मानें जाते है वही स्थिति शासन देवो की समझनी चाहिये। चाहे वे जिन-प्रतिमा के साथ हो चाहे अलग। वे हमेशा अपूज्य ही है।) छिलको का सेवन पशु करते है मनुष्य नही। मनुष्य तो फलो का सेवन करते है उसी तरह शासनदेवो की सेवा-पूजा मूढ-अविवेकी करते है। सम्यक्त्वी-विवेकी नही। विवेकी तो जिनेन्द्र की ही सेवा-पूजा करते है। अनाज के साथ भूसा और ककर भी होते है साथ होने से वे कभी ग्राह्य

नही होते-ग्राह्य तो अनाज ही होता है, भूसा ककर नही। यही स्थिति शासन देवो के साथ समझ लेनी चाहिये। अत जिनशासन ही की भक्ति करना चाहिये शासनदेवो की नही, क्योकि-शासनदेव तो स्वय जिनशासन के भक्त-नौकर है खुद जिनशासन नही हैं। नौकर की क्या नौकरी करनी, नौकरी तो ठाकर (भगवान्) की करनी चाहिये। इसीसे सिद्धातसार (नरेन्द्रसेनाचार्यकृत) मे जिनशासन ही की भक्ति बताई है शासनदेवो की नही। देखो—"यो जिनशासन भक्ति मनसा वाचा च कायतो वापि। कुरुते तस्य समीहित सिद्धि स्त्वचिरेण कालेन ॥१०१॥ अ० ११

प्रश्न .–याग मण्डल मे अरिहत के साथ भवनत्रिक देवो की स्थापना क्यो की जाती है ? इससे क्या भवनत्रिक देव (भवन वासी, व्यतर, ज्योतिष्क) पूज्य नही होते ?

उत्तर –याग मण्डल के मध्य मे अरिहतादि परमेष्ठी और चारो तरफ भवनत्रिक देवो की स्थापना समवशरण सभा की नकल है। जिस तरह समवशरण सभा के मध्य मे अरिहत विराजमान होते है और चारो तरफ १२ सभा होती है जिसमे पूज्य तो अरिहत होते है, बाकी तो सब पूजक होते है उसी तरह यागमण्डल की रचना मे भी पूज्य तो अरिहतादि परमेष्ठी ही होते है, बाकी अन्य सब पूजक होते है। अकेले सभापति से सभा नही कहलाती। सभा सभासदो (श्रोतागण) से ही सुशोभित होती है इसी तरह यागमण्डल मे शोभा और परिपूर्णता की दृष्टि से भवनत्रिक देवो को सम्मिलित किया गया है। इसमे पूज्यता का कोई प्रश्न नही है।

प्रश्न –फिर भी कुछ प्रतिष्ठा-अभिषेक पाठादि ग्र थो मे शासनदेवो (भवनत्रिक) को अर्घसमर्पण करने का कथन क्यो पाया जाता है ? यथा—

1. यागेस्मिन्नाक नाथ,
ज्वलनपितृपते नैकषेय प्रचेतो ।
वायोरैदेश शेषो,
डुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः ॥१२॥
मत्रै र्भूः स्व. स्वाधाद्यै,
रधिगतवलय स्वासुदिक्षूपविष्टाः ।
क्षेपीयः क्षेमदक्षाः,
कुरुत जिनसवोत्साहिना विघ्नशातिम् ॥१३॥
—सोमदेवकृत अभिषेक पाठ (यशस्तिलकचम्पू)

२ पूर्वाशाधीश हव्या,
शन महिषगते नैऋ ते पाशपाणे ।
वायो यक्षेन्द्र चन्द्रा,
भरणफणिपते रोहिणीजीवितेश ॥१०॥
सर्वेप्यायात याना,
युध युवतिजनै. सार्धमो भू र्भुवः स्व ।
स्वाहा गृह्णीत चार्घ्यं,
चरुममृतमिद स्वास्तिक यज्ञभाग ॥११॥
—पूज्यपाद अभिषेक पाठ

३ आवाहिऊण देवे,
सुरवइ सिहिकालणेरिए वरुणे ।
पवणे जखे ससूली,
सपियसवाहणे ससत्थे य ॥४३९॥
दाऊण पुज्जदव्व,
बलि चरुयतहय जण्ण भायं च ।
सव्वेसिं मते हिय,
वीयक्खरणाम जुत्तेंहि ॥४४०॥
—देवसेन कृत भावसग्रह

४. इन्द्राद्यष्ट दिशापालान् दिशाष्टसु निशापति ।
रक्षो वरूणयोर्मध्ये शेषमीशानशक्रयो· ४८१
न्यस्या ह्वानादिक कृत्वा क्रमेणंतान्मुद नयेत् ।
वलिप्रदानत सर्वान्स्वस्वमत्रै र्यथादिशं ॥४८२॥

— वाम देवकृत भावसग्रह

इनमे दशदिग्पालो का आह्वान कर उनसे अर्घ्यादि पूजाद्रव्य (यज्ञाश) ग्रहरण करने का निवेदन किया गया है इसमे क्या तात्पर्य रहस्य सन्निहित है ?

उत्तर :–उपलब्ध प्रतिष्ठापाठो मे वसुनदिश्रावकाचार के अन्तर्गत ६० गाथाओ का प्रतिष्ठा प्रकरण ही प्राचीन है अन्य (आशाधरादिकृत) सब उसके वाद के है। वसुनदि प्रतिष्ठा प्रकरण मे कही भी शासनदेवो (भवनत्रिक) को अर्घसमर्पण का कोई कथन नही है। जटासिह नदि कृत वराग चरित (८ वी शती का) प्राचीन ग्रन्थ है उसके पर्व २३ मे जिन विम्व प्रतिष्ठा विधि का विस्तृत वर्णन है उसमे भी कही दिग्पाल-शासनदेवादि का आह्वान और उनका पूजन कतई नही वताया हैं। वाद के प्रतिष्ठा-अभिषेक-पाठादि ग्र थो में यह नई शैली अपनाई है उसका तात्पर्य भी शासनदेव-पूजा नही है किन्तु सौधर्मेन्द्र द्वारा भवनत्रिक देवो को अर्घ-समर्पण जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिए किया गया है अर्थात् इन्द्र भगवान का पच कल्याणक महोत्सव मनाता है अगर वह अकेला मनाये तो कोई ठाटवाट नही रहता अत इन्द्र अपनी

देवगति के चतुर्णिकाय देवों का आह्वान करता है और भगवान की पूजा करने के लिये उन सबको अर्घ-पूजाद्रव्य प्रदान करता है इसे ही यज्ञांशदान (पूजाद्रव्य के हिस्से का देना) कहा गया है जो सामूहिक (सम्मिलित) पूजा का अग समझना चाहिये। (आज भी ऐसी ही शैली नित्यपूजा और मण्डल विधान पूजा मे भी दृष्टिगत होती है—पूजक मनुष्य मदिर मे आगत अपने साधर्मी भाइयों को अपने पूजाथाल मे मे जिनपूजा के लिए अर्घसमर्पण करता है। जिस तरह यहां साधर्मियो को अर्घसमर्पण साधर्मी पूजा नही है किन्तु वह जिनपूजार्थ है उसी तरह प्रतिष्ठा-अभिषेकादि ग्रन्थो मे इन्द्र द्वारा भवनत्रिको को अर्घसमर्पण भवनत्रिकदेव-पूजा नही है

७. A. चतुर्णिकायामर सघ एप आगत्य यज्ञे विधिना नियोग।
स्वीकृत्य भक्त्याहि यथार्ह देशे सुस्था भवन्त्वान्हिक
कल्पनायां ॥१॥

B महपूजासु जिणाण कल्लाणेसु य पजति कप्पसुरा ॥५५४॥
त्रिलोकसार।

C. देवा सर्वेऽच्युतान्ता विदुरत सुतनु क्ष्मामिमामेत शान्त्यै ॥८॥
नित्य-महोद्योत ("जिन यज्ञ कल्प" अ० ३ श्लोक १)

D. चतुर्विधसुदेवोघै पूजित सुमहोत्सवै। तीर्थंकृत्परमस्थान सयजे चाष्टधार्चनै ॥ —सप्तपरमस्थानपूजा (शुभचन्द्र कृत)

E तद्वच्चैशानमुख्या कृततदवभृथस्नातयोऽन्येपि चार्चा ॥४॥
नित्यमहोदयोत

पचकल्याणकादि मे जिन-पूजार्थदेवगणो के आने की बात तिलोयपण्णती महापुराणादि वीसो ग्रन्थो मे भी लिखी है किन्तु किसी मे उन देवताओ की पूजा करने की बात कही भी नही लिखी है।

लेकिन वह भी जिनपूजार्थ ही है ।

ऊपर जो ३ ग्रन्थ-प्रमाण दिये है उनमे अर्घादि द्वारा दिग्पालो को पूजने का तृतीया विभक्ति परक कथन नही है किन्तु दिग्पाल अर्घादि को ग्रहण करे ऐसा द्वितीया विभक्ति परक कथन है। ऐसा ही कथन अन्य अभिषेक पाठादि मे है। इनसे स्पष्ट और सुसगत रूप से सिद्ध है कि-इन्द्र द्वारा दिग्पालादि को अर्घसमर्पण जिनपूजार्थ है। स्वय दिग्पालो की पूजा के लिए नही।

प्रश्न—आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रम।
ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यातु यथास्थिति ॥

विसर्जनपाठ के इस श्लोक मे तो देवो का आह्वान उनकी भक्ति पूर्वक पूजा करने की दृष्टि से बताया गया है यह कैसे ?

उत्तर—इसमे 'ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या" पाठ ही गलत है वह बदला हुआ है। प्राचीन अर्वाचीन अनेक हस्तलिखित गुटको मे इस जगह शुद्ध पाठ "ते जिनाभ्यर्चन कृत्वा" पाया जाता है। हमारे पास शेरगढ, हिडोली, बसवा, चादखेडी से प्राप्त कुछ हस्तलिखित गुटके है उन सब मे भी यही "ते जिनाभ्यर्चन कृत्वा" शुद्ध और सुसगत पाठ पाया जाता है। यही शुद्ध पाठ रावजी सखाराम दोशी शोलापुर द्वारा प्रकाशित 'शासनदेव पूजा के अनुकूल अभिप्राय" नामक ट्रेक्ट के पृ ७१ और ७४ पर पाया जाता है इस पाठ के विषय मे वहा प वशोधरजी शास्त्री शोलापुर वालो ने लिखा है कि—'यह पाठ इधर के पूजापाठो मे व प्रतिष्ठा पाठो में तथा पुरानी हस्तलिखित प्रतियो मे मिलता है-यह पाठ सिद्धात अनुकूल और शब्दशास्त्र से भी निर्दोष है।"

हमारे पास के एक गुटके में यह विसर्जन श्लोक लघु अभिषेक पाठ का बताया गया है वहां लिखा है:

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं ।
ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा सर्वे यान्तु यथास्थितं ॥

स्वस्थानं गच्छ गच्छ पुष्पाक्षत वर्पेण सर्वामर विसर्जन-इति अभिषेक. समाप्त. । (शायद यह अभयनंदि कृत लघुस्नपन (श्रेयोविधान) का विसर्जन श्लोक हो किन्तु मुद्रित लघुस्नपन मे यह श्लोक नही पाया जाता है सम्भवत. छूट गया हो)

इस शुद्ध श्लोक का सही अर्थ इस प्रकार है—

"जिन देवो का पहिले आह्वान किया गया था और जिन्होंने (अर्हत्पूजार्थ) यथाक्रम से अपना अपना पूजाद्रव्य भाग प्राप्त कर लिया वे अब जिन-पूजा करके अपने-अपने स्थान को जावें ।"

इस कथन से सुस्पष्ट है कि-इन्द्र द्वारा देवगण जिनेन्द्र की पूजा के लिए ही बुलाये जाते हैं ।[८] स्वय उन देवो की पूजा के लिये नही और उन देवो को पूजाद्रव्य भी जिन पूजा के लिये ही अर्पण किया जाता है स्वय उनकी पूजा के लिए नही

यही बात निम्नांकित ग्रन्थो के विसर्जन श्लोक और मन्त्रों मे स्पष्ट लिखी है—

---

८. एते तेति त्वरित ज्योतिर्व्यन्तर दिवौकसाममृत भुज ।
कुलिश भृदाज्ञापनया कुर्वन्त्यन्ये समततो व्याह्वानम् ॥१२॥
नंदीश्वर भक्ति

इसकी प्रभाचन्द्र कृत टीका मे लिखा है कि—देवो का आह्वान अर्हत्पूजार्थ किया जाता है देखो—(देवा कुर्वन्ति व्याह्वान शब्द अर्हत्पूजार्थं इन्द्राज्ञया ।

(१)

मंगलार्थं समाहूता विसर्ज्याखिल देवताः।
विसर्जनाख्य मन्त्रेण वितीर्य कुसुमांजलिं ॥१२४॥
ॐजिनपूजार्थं समाहूता देवता विसर्जनाख्य मन्त्रेण
सर्वे विहित महा महाः स्वास्थान गच्छत यः यः यः।
इति विसर्जनमंत्रः—प्रतिष्ठासार संग्रह (वसुनंदिकृत)

(२)

प्रागाहूता देवता यज्ञभागैः
प्रीता भर्त्तुः पादयोरर्घदानैः।
क्रीतां शेषां मस्तकैरुद्वहन्त्यः,
प्रत्यागन्तु यान्त्वशेषा यथास्वं ॥१६५॥

—नित्य महोद्योत (आशाधर कृत)

(३)

ॐ जिन पूजार्थमाहूता देवाः सर्वे विहित महामहा
स्वस्थानं गच्छत गच्छत जः जः. इति विसर्जन
मन्त्रोच्चारणेन यागमण्डले पुष्पांजलिं वितीर्य देवान्
विसर्जयेत् ॥१॥

—'जिनयज्ञकल्प' अध्याय ५ (आशाधर कृत)

(४)

देव देवार्चनार्थं ये समाहूताश्चतुर्विधाः।
ते विधायार्हतां पूजां यांतु सर्वे यथायथं ॥

—इन्द्रनंदि संहिता

(५)

दधे मूर्ध्नार्हतः शेषां माहूता सर्वदेवता।
मया क्रमाद् विसृज्यते निर्गच्छामि जिनालयात् ॥

—इन्द्रनंदि संहिता (पूजासार पत्र ६२)

इनमे बताया है कि—'जिनपूजा के लिए जिनका आह्वान किया गया है और जिन्होंने पूजाद्रव्य प्राप्त कर उससे जिन-पूजा करली है वे सब देवगण अपने अपने स्थान को जावे ।'

ये सब श्लोक और मत्र 'आहूता ये पुरा देवा' इस श्लोक के हूबहू रूपान्तर है तथा इनसे "ते जिनाभ्यर्न कृत्वा" इस शुद्ध पाठ की भी ठीक पुष्टि हो जाती है ।

अभयनदिकृत लघुस्नपन (भावशमकृत टीका) मे लिखा है .—

१ गध वघुरघी. प्रतीच्छतुतरामत्राऽर्हत पूजने ।।२१।।

(टीका-वघुरघी .=धनपति', अत्राऽर्हत· पूजने=क्रियमाणे सर्वज्ञस्य स्नपने, गध=गंधादियज्ञभाग, प्रतीच्छतुतरा=अति-शयेन स्वीकुरुताम्)

२. पात्र द्राक् प्रतिगृह्यतामिह महे पुष्पादि-काभ्यर्चनम् ।।२२।।

(टीका-पुष्पादिक मेवाभ्यर्चन पूजाद्रव्य तदेव स्वक पात्र, द्राक्=शीघ्र, इहमहे=अस्मिन्नभिषेके, प्रतिगृह्यता=स्वी-क्रियताम् ।)[६]

इनमे भी अर्हत्पूजन के लिये ही गधादि पूजा-द्रव्य और पूजापात्र दिग्पालो को ग्रहण करने के लिये लिखा है ।

इस तरह 'शासनदेवपूजा' शब्द का अर्थ शासन देवो की

६. आशाधर कृत 'नित्यमहोद्योत' (श्रुतसागर कृत टीका) मे लिखा है-
पूजापात्र कराग्रत सरमुपेत्यो पात्त बल्यर्चना ।।१०८।।
(टीका-पूजापात्राणि करेषु येषा ते पूजापात्रकरास्तेः अग्रत. सर पुरोगामिनो यस्मिन्नु पायन कर्मणि तत्तथोक्त, उपेत्य=आगत्य, उपात्तबल्यर्चना =उपात्तगृहीत बल्यर्चन पूजोपहारपूजन यैस्ते उपात्तबल्यर्चना)

पूजा सिद्ध नही होता किन्तु शासन देवों द्वारा जिन पूजा सिद्ध होता है यही अर्थ सब जगह ग्रहण करना चाहिये। अर्थात्- 'शासन देव पूजा' शब्द मे षष्ठीतत्पुरुषसमास न लेकर तृतीया-तत्पुरुष समास लेना ही सुसगत होगा।

प्रश्न :-गुणभद्रकृत अभिषेकपाठ के श्लोक ४९ के मत्र भाग मे लिखा है :—

"ॐ इन्द्र! आगच्छ इद अर्घ्यं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यता।"

इसमे पूजार्थक यज धातु के प्रयोग से इन्द्र नाम के दिग्पाल की पूजा सिद्ध होती है (अभिषेक पाठ सग्रह पृष्ठ २३) ऐसा ही अभयनदि कृत लघुस्नपन के श्लोक १५ के मत्रभाग मे लिखा है (अभिषेक पाठ सग्रह पृष्ठ ६७) इन सब का क्या समाधान है?

उत्तर :-"यजी देव पूजा सगतिकरण दानेषु" अर्थात् यज्-धातु के तीन अर्थ होते है १-देवपूजा २-सगति करना, सन्निकट होना ३-देना। यहा यजामहे का अर्थ ददामहे-देता हू है देखो अभिषेक पाठ सग्रह पृष्ठ ६७। (भावशर्मकृत टीका)। (यहा 'यजामहे' का ददामहे' के सिवा और कोई दूसरा अर्थ सभव ही नही है। अगर पूजा अर्थ लिया जायेगा तो उन द्रव्यो को पूजना अर्थ हो जायेगा और आगे की क्रिया से भी उसका अर्थ नही जुडेगा। पूजा अर्थ तो तब होता जब अर्घ्य और यज्ञभाग शब्द द्वितीया विभक्ति के बजाय तृतीया विभक्ति मे होते किन्तु ऐसा है नही इसी से टीकाकार भावशर्मा ने यजामहे का अर्थ स्पष्टतया ददामहे ही दिया है। पूरे मन्त्र भाग का सही अर्थ इस प्रकार है :— हे इन्द्र आओ और यह अर्घ्य यज्ञभाग तुम्हे देता हू इसे स्वीकार करो।")

यहा गृह्यता (ग्रहण करो) शब्द से ही काम चल सकता था फिर भी जो 'प्रति' उपसर्ग लगाया है वह जिनेन्द्र के प्रति ग्रहण करो इस भाव के द्योतन के लिये लगाया है अर्थात्—यह पूजा द्रव्य दिग्पाल की पूजा के लिये प्रदान नही किया गया है किन्तु जिन-पूजा के लिये दिग्पाल को दिया गया है। यह आशय स्पष्ट अभिव्यक्त होता है ।[१०]

यज धातु के जो ऊपर ३ अर्थ बताये है उनमे पूजा अर्थ अरहत ही के साथ लगाना चाहिये वाकी देना और सगति करना अर्थ भवनत्रिक देवो के साथ लगाना चाहिये ।

नित्यमहोद्योत श्लोक ९५ की टीका मे (अभिषेक पाठ सग्रह पृष्ठ १८७ मे) लिखा है—"यजे=पूजयामि इति सन्निधिकरण सूचित अर्थात् यहा यज धातु का तात्पर्य सन्निधिकरण अर्थ मे है । आगे के श्लोको मे भी यज धातु का प्रयोग है उन सव का यही अर्थ है कि इन्द्र भवनत्रिक देवो को जिनपूजार्थ अपने सन्निकट (साथ मे) लेता है ।[११] अथवा भवनत्रिको को जिनपूजार्थ पूजाद्रव्य देता है । किसी ग्र थकार ने यज धातु के पर्यायवाची रूप मे अर्च, पूजा, मह आदि धातुओ का भी कही प्रयोग कर दिया हो तो उसका भी यही (दान, सगतिकरण ही) अर्थ

१० जिस प्रकार जिन-पूजा मे "अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा" लिखा गया है ऐसा भवनत्रिक देवो के अर्घ्यं समर्पण मे कही भी नही लिखा है वहा तो "इद अर्घ्यं गृह्णीष्व । इद नैवेद्य प्रति गृह्यता" ऐसा साधारण लिखा है । जिसका अर्थ यह अर्घ्यादि ग्रहण करो है । वह अर्घ्यं नैवेद्य ग्रहण भी अर्हंत् पूजार्थ ही होता है ।

११ नेमिचन्द्र प्रतिष्ठातिलक मे भी इसी वात को शासन देवियो के विशेषण रूप मे इस प्रकार लिखा है "सर्वज्ञयज्ञ सहकारिता आचरतीना ।"

लेना चाहिये, अष्टद्रव्य-पूजा रूप अर्थ नही क्योकि चतुर्णिकाय देवो के साथ यह असगत और असमीचीन है।

नित्यमहोद्योत श्लोक ५१ (अभिषेक पाठ सग्रह पृष्ठ १५१) मे 'भूम्यर्चन' (भूमिपूजा) का कथन है उसका टीका कार ने अर्थ-"भूमि-शुद्धि" दिया है। नीचे पाद टिप्पण मे लिखा है- 'ॐ ह्री श्री क्ष्वी भू शुद्ध्यतु स्वाहा। भूमिशोधनम् ॥"

यही वात गुणभद्र कृत वृहत्स्नपन के श्लोक २ मे इस प्रकार दी है · — ॐ शोधयामि भू-भाग जिनेन्द्राभिषवोत्सवे ॥ भूमि शोधनम्। (अभिषेकपाठसग्रह पृष्ठ—१४) पृष्ठ १४५-दर्भपूलेन भूमि सम्मार्जयेत्। ज्वलर्भपूलानलेन भूमि ज्वालयेत्। इति भूमि शोधन (अभिषेक पाठ सग्रह पृ० १४६) यहां भूमि पूजा का अर्थ भूमि की अष्टद्रव्य से पूजा नही है किन्तु जलादि से भूमि का धोना और वुहारी से भूमि का प्रमार्जन करना है जो सार्थक और सगत है।

इसी तरह पीठार्चन का अर्थ पीठ की जलादि से शुद्धि[१२] और पीठ पर अष्ट द्रव्य थाल रखना है। कलशार्चन का अर्थ भी चारो कोणो में कलशो की स्थापना करना है। यही पीठ और कलश की सही पूजा है।

नित्यमहोद्योत श्लोक ७३ के 'प्रसाद्य' पद का टीकाकार ने प्रसन्नी कृत्य-पूजयित्वा अर्थ किया है (अभिपेक पाठ सग्रह पृष्ठ १६३) इससे पूजा का अर्थ प्रसन्न करना भी हो जाता है।

इस तरह अर्चन या पूजा शब्द का अर्थ सर्वत्र अष्ट द्रव्य से पूजन करना ही नही होता है किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार विविध अर्थ हो जाते है। प्रकरणानुसार सगत अर्थ ही लेना चाहिये।

---

१२. ॐ नमोऽर्हते भगवते पवित्रतर जलेन, पीठ प्रक्षालन करोमि।

सोमदेव सूरि ने 'यशस्तिलक चम्पू' आश्वास ८ मे लिखा है :—

> देवं जगत्त्रयीनेत्रं, व्यन्तराद्याश्च देवता ।
> समं पूजाविधानेषु, पश्यन्दूरं व्रजेदधः ॥२४०॥
> ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे ।
> अतो यज्ञांश दानेन माननीयाः सुदृष्टिभि ॥२४१॥

अर्थात्—सर्वज्ञदेव अरिहत और व्यतरादि देवताओ को पूजा विषय मे जो समान देखता है वह नीचे-नरक मे दूर तक जाता है अर्थात्-सातवे नरक के नीचे जो निगोदस्थान है वहा तक का पात्र होता है ॥२४०॥

वे व्यन्तरादि देवता शासन की रक्षा के लिये आगम मे कल्पित किये गये है अत. सम्यग्दृष्टि उन्हे (जिनपूजार्थ) पूजा-द्रव्यभाग देकर सम्मानित प्रसन्न करे ॥२४१॥

इसमे व्यन्तरादि देवो की पूजा तो दूर पूजा की दृष्टि मात्र को नरक-निगोद का स्थान बताया है।

जिस तरह सुभौम चक्रवर्ती ने व्यन्तर देव के वहकावे में आकर जल मे नमस्कार मत्र लिख उसे मिटा दिया था और जिससे वह सातवे नरक मे गया था तो जो व्यन्तर-पूजा (मिथ्यात्व सेवन) करते हैं वे तो निश्चय ही नरक निगौद के पात्र होगे इसमे कोई सशय नही। इसी से स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे लिखा है :—

> न सम्यक्त्व सम किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
> श्रेयोश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत् तनुभृताम् ॥३४॥

अर्थात्—प्राणियो के लिये तीन काल और तीन लोक मे सम्यक्त्व के समान दूसरा न तो कोई हितकारी है और न मिथ्यात्व के समान कोई दूसरा अहितकारी है।

[ऊपर श्लोक २४१ मे सोमदेव ने कल्पित शासनपालो को जिनपूजार्थ पूजाद्रव्य देना बताया है स्वय उनको पूजना नही बताया है अगर उन्हे ऐसा बताना इष्ट होता तो वे "मान-नीया" की बजाय "पूजनीया:" शब्द का प्रयोग कर सकते थे। किन्तु ऐसा है नही, सोमदेव ने तो यशस्तिलक चम्पू के आश्वास ६ श्लोक १३९ से १४२ मे सूर्य को अर्घ प्रदान करना यक्षादि की सेवा पूजा करना इनको स्पष्ट मूढता-मिथ्यात्व बताया है][१३]

इन्द्र शासनदेवादि का आह्वान और उन्हे अर्घ-समर्पण जिनपूजा ही के लिये करता है इसकी अभिव्यक्ति जिन-यज्ञ-कल्प (आशाधार कृत) अध्याय ३ के निम्नाकित श्लोको से भी अच्छी तरह होती है :—

प्रभु भक्तु मिहागत्य प्राचीं चिन्वन्निज श्रिया ।
बलि विजययक्षेश मंत्रपूता स्वसात्कुरु ॥१९६॥
अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् ।
यथार्हबलिसतुष्टो वैजयत जय तनु ॥१९७॥
देवाधिदेवसेवार्थं प्रतीचीं दिशमास्थितः ।
बलिदानेन संप्रीतो जयत जय दुर्जयान् ॥१९८॥

इनमे कही भी पूजाद्रव्यो से यक्षो को पूजित करने की बात नही लिखी है किन्तु जिनेन्द्र की पूजा के लिये दिये गये पूजाद्रव्यो से उनका सतुष्ट होना लिखा है।

प्रश्न :—जिनयज्ञकल्प अपरनाम प्रतिष्ठा सारोद्धार यानि आशाधर प्रतिष्ठापाठ के अध्याय ३ श्लोक ५० मे अच्युतादेवी के लिये "प्रणौमि" (नमस्कार करता हू) यह कैसे लिखा है ?

---

१३ सूर्यार्घोग्रहण-स्नान""रत्नवाहन भू यक्ष शस्त्र शैलादि सेवन ।
एवमादि विमूढाना ज्ञेय मूढमनेकधा ॥ १३९-१४२ ॥

इसी तरह श्लोक १६२ में अनिल दिग्पाल के लिये भी 'प्रणौमि' (नमस्कार करता हूं) कैसे लिखा है ?

उत्तर :—जैन ग्रन्थ उद्धारक कार्यालय बम्बई से वि स. १६७४ मे मुद्रित प्रति के ये पाठ गलत हैं । हमने आमेर शास्त्र भंडार की वि. स. १५६० की प्राचीन हस्तलिखित प्रति मगाकर देखी तो उसमे 'प्रणौमि' की जगह 'प्रणामि' (सतुष्ट करता हू) शुद्ध पाठ मिला है ।

देवदेवियो की पूजा भक्ति की इच्छिवश अविवेकी प्रतिलिपिकारो ने ऐसे गलत पाठ बना दिये है । शुद्ध पाठ प्रणामि (सतुष्ट करता हू) ही है इनकी पुष्टि उपरोक्त श्लोको के आगे पीछे के श्लोक ५४, ४५ तथा १६०, १६१ मे दिये प्रीणिताः', 'प्रमोदस्व', 'तर्पयामि', 'प्रीणयामि' पाठो मे भी होती है। ये सब पाठ भी 'सन्तुष्ट करता हू' इस अर्थ के ही वाचक हैं ।

('अभिषेक पाठ सग्रह' पुस्तक में जितने अभिषेक पाठ दिये हैं उनमे एव अन्य अभिषेक पाठो मे तथा प्रतिष्ठादि ग्रन्थों मे जो अनेक मंत्र यत्र दिये हैं उन सब मे सिर्फ पच परमेष्ठी वाचक नामो के आगे ही नम शब्द का प्रयोग किया गया है चतुर्णिकाय देवो के लिये कही भी नमः शब्द का कोई प्रयोग नही किया गया है इन देवो के लिये तो सिर्फ स्वाहा शब्द का प्रयोग किया गया है)[१४]

देवसेन कृत 'भावसग्रह' गाथा ४४३ से४७० तक सिद्ध चक्र

---

१४. अगर भूले भटके गलती से चतुर्णिकाय देवो के लिए कही 'नम:' लिखा मिल जाये तो उसे प्रमाण नही मान लेना चाहिये क्योंकि वह पूर्वाचार्यों से सम्मत नही है। प्रतिलिपिकारो के प्रमाद व अज्ञान से ही ऐसी गलतिया-अशुद्ध पाठ हो जाते हैं। प्राचीन शुद्ध प्रतियो से उन्हे ठीक कर लेना योग्य है ।

यत्र, शान्ति चक्र यत्र, पचपरमेष्ठी चक्र यत्रो का वर्णन है इन सब मे बताया है कि मध्य मे 'ॐ अर्हद्भ्यो नम ' इत्यादि लिखकर पचपरमेष्ठी का स्थापन करना चाहिये और उनके परिकर रूप मे भवनत्रिक देवो के लिए 'ॐ देवदेव्यै स्वाहा' लिखकर देवो का स्थापन करना चाहिए इनमे कही भी देवदेवियो के लिए नम शब्द का कोई प्रयोग नही किया गया है। गाथा ४६८ मे इन सब यत्रो को स्पष्टतया पचपरमेष्ठी वाचक ही बताया है (कही भी देव देवी यत्र मन्त्र नही बताया है) देखो —

ए ए जतुद्धारे पुज्जह परमेट्ठिपचअहिहाणे।
इच्छिय फलदायारो पाव घणप्पडल हतारो ॥४६८॥

अर्थात्—ये यत्रोद्धार पचपरमेष्ठी वाचक है इनकी पूजा करने से इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती है तथा पापरूपी बादलो के पटल विनष्ट हो जाते हैं।

महापुराण मे जिनसेनाचार्य ने पीठिकादि अनेक मत्र लिखे है उनमे कही भी शासनदेवो का नामोल्लेख तक नही है। वहाँ अरिहत सिद्ध ऋषिवाची मंत्रो के आगे तो 'नम, शब्द का प्रयोग किया है और सुरेन्द्र निस्तारकादि मत्रो के आगे सिर्फ 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया है कही भी नम शब्द का प्रयोग नही किया है। स्वाहा आह्वान के लिये है और नम पूजन के लिये है।[१५]

---

१५ आजकल जो नित्यपूजादि मे देवशास्त्र गुरु-दशलक्षण-रत्नत्रय-पचमेरु-निर्वाण क्षेत्रादि का आह्वानन-विसर्जन ठूणे मे किया जाता है यह प्रणाली समुचित प्रतीत नहीं होती-यह आधुनिक, असगत और सिद्धात विरुद्ध पद्धति है। क्योकि अरहत सिद्धादि

'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करने से बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि—अग्नि में आहुति देना उन देवों की पूजा करना है किन्तु ऐसा नहीं है। स्वाहा और आहुति शब्दों का अर्थ आह्वान करना,[16] स्मरण करना है उस क्रिया को आत्मसि-द्धि के लिए जल में या अग्नि में द्रव्य अर्पण किया जाता है

मुक्त जीव किसी के बुलाने से आते नहीं हैं और न किसी के भेजने से जाते हैं। इसके सिवा जब एक ही समय में अनेक पूजक उनका आह्वान करेंगे तो वे किसके पास जावेंगे और किसके पास नहीं जावेंगे? मालूम कि मुक्तात्मा तो संसार में कभी लौट कर नहीं आते हैं। यह तो रही मुक्तात्माओं की बात किन्तु जो अचेतन-स्वरूप हैं ऐसे परमेष्ठी और निर्वाण क्षेत्रादि वे किसी के लिये कैसे गमनागमन करेंगे? तथा रत्नत्रय और दशलक्षण जैसे उत्कृष्ट गुणों का कैसे कोई विसर्जन करेगा? आदि अनेक वि-प्रतिपत्तियाँ और असंगतियाँ हैं। ये सब ऊलजलूल व्यर्थ की क्रियायें हैं जो वैज्ञानिक-सुसंस्कृत-युक्तिवादी जैनधर्म की प्रतिष्ठा (PRESTIGE) के विरुद्ध हैं। इन्हें चाहें भक्ति का अतिरेक कहें किन्तु हैं ये सब विडम्बनामात्र। प्राचीन ग्रंथों में कहीं इनका उल्लेख नहीं है।

प्रतिष्ठा और मंडल विधानादि में इन्द्र द्वारा चतुर्णिकाय देवों का आह्वान और विसर्जन करना शास्त्रों में बताया है जो संगत है परन्तु वेदी में अरहंतादि की प्रतिमा एवं धातु के पंचमेरु विरा-जमान रहते भी दूर्णे में इन का आह्वान-विसर्जन करना बिलकुल असंगत है। मनीषियों को विचार कर योग्य सुधार करना चाहिये। विशेष के लिये "जैननिबंध-रत्नावली" का ३४ वां निबंध "पंचोपचारी पूजा" द्रष्टव्य है।

१६ सुष्ठु आहूयते देवा अनेन इति स्वाहा।

अथवा ठूणे आदि मे पुष्पक्षेपण किया जाता है यह पूजा नही है किन्तु आह्वानमात्र है ।

'स्वाहा' शब्द का प्रयोग मत्र की पूर्ति के लिए भी होता है यानि आखिर मे 'स्वाहा' लिखकर उस मत्र की समाप्ति की सूचना दी जाती है यथा-ॐ ह्री श्रीपीठ स्थापयामि स्वाहा । ॐ ह्री कलशोद्धरण करोमि स्वाहा । (अभिषेक पाठ सग्रह पृ. ४२--४४)

इस विषय मे विशेष जिज्ञासुओ को "महावीर जयन्ती स्मारिका १९७०" मे प्रकाशित हमारा लेख--"पीठिकादि मत्र और शासनदेव' देखना चाहिये ।

प्रश्न—अकृत्रिम चैत्यालयो की पूजा मे लिखा है--"वदे-भावन व्यन्तरान् द्यु तिवरान् कल्पामरान् सर्वगान्" इसमे चतुर्णिकाय देवो को नमस्कार बताया है । यह कैसे ?

उत्तर—यह पाठ ही अशुद्ध है शुद्ध पाठ जैन सिद्धात भवन, आरा आदि ग्रन्थ भडारो की हस्तलिखित प्रतियो मे इस प्रकार है —

"वदे भावन व्यतर द्यु तिवर स्वर्गामरावासगान्" । अर्थात्—भवनवासी, व्यतर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवो के आवासो मे विद्यमान अकृत्रिम चैत्यालयो को नमस्कार हो । पूजा का नाम भी "कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजा" है पूजा के अत मे जो मत्र भाग दिया है उसमे भी यही नाम दिया है (देखो—"ॐ ह्री त्रिलोक सवधि कृत्रिमाकृत्रिम चैत्याल-येभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा") कही भी चतुर्णिकाय देवो की वदना-पूजा नही बताई है । किन्तु सर्वत्र चतुर्णिकाय देवो के निवास स्थानो मे विद्यमान अकृत्रिम चैत्यालयो की वदना-

पूजा बताई है। उपर्युक्त पूजा के श्लोक २, ३ और ५ में भी पुन' यही प्रकट किया है :—

वनभवन गतानां दिव्यवैमानिकानां ।
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥३॥
……………………व्यंतरे स्वर्गलोके ।

ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥५॥

यही बात 'मंगलाष्टक' में बताई है देखो—

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे "
जिनगृहा. कुर्वन्तु ते मंगल ॥७॥

चैत्य भक्ति में भी देखो—

भवनविमान ज्योतिर्व्यंतर नरलोक विश्व चैत्यानि ।
त्रिजगदभिवंदितानां वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणाम् ॥८॥[१७]

प्रश्न—'जिनयज्ञ कल्प' अध्याय ४ श्लोक २१७ में लिखा है—सर्वाणि संघ निहताद् दुरितानि सोऽर्हन् ॥ अर्थात्—वे अर्हत हमारे सब पापो को नष्ट करें। इसी तरह श्लोक २१६ मे शासन देवता के लिए भी लिखा गया है कि—'निवारयंती दुरितानि नित्य'। इससे शासन देवता की पापनाशकता यानि पूज्यता सिद्ध होती है।

उत्तर—श्लोक २१६ मे दुरितानि' का अर्थ 'पाप' नही है किन्तु 'विघ्न' है। अर्थात्—शासन देवता को विघ्न निवारण

---

१७ नेमिचन्द्रकृत 'प्रतिष्ठा तिलक' अध्याय ७ पृ २७६ मे भी ऐसा ही बताया है देखो—

भवनज वनजाना ज्योतिषा कल्पजाना, मणिमयनिलयस्था येऽहमिन्द्रालयस्थाः ।
बहुविभव युता. हि ये च मध्ये त्रिलोकी जिनपति निलयास्ता-स्तानहं सर्वान्महामि ॥

करने वाली बताया गया है इसी से श्लोक २१७ की तरह निहताद् (नाश करे) क्रिया का प्रयोग न करके श्लोक २१६ मे निवारयती (दूर करने वाली) साधारण क्रिया का प्रयोग किया है।

अगर शासन देवता को पापनाशिनी माना जायेगा तो वह बिल्कुल सगत नही होगा क्योकि इन देवो के स्वय के ही पाप (कर्म वध) नष्ट- नही हुए है तो ये दूसरो के पाप कैसे नष्ट कर सकते हैं। यह पापनाश अर्थ तो जिनेन्द्र के ही साथ सगत होगा। शासन देवता के साथ तो विघ्ननिवारण अर्थ ही सगत होगा। शास्त्रो मे भी विघ्ननिवारण के रूप मे ही इनका वर्णन किया गया है।

आशाधर ने तो शासन देवो को कुदेव और अवद्य लिखा है देखो 'अनगार धर्मामृत' अध्याय ८—

श्रावकेणापि पितरौ गुरु राजाप्यसंयता।
कुलिंगिन. कुदेवाश्च न वद्यासोऽपि सयतै. ॥५२॥

(स्वोपज्ञ टीका—कुदेवा =रुद्रादय., शासनदेवतादयश्च)

यह श्लोक 'मूलाचार 'अ ७गाथा ९५ के अनुसार बनाया गया है, इस गाथा की सस्कृत टीका मे वसुनदि ने भी नाग यक्षादि समग्रदेव जाति को अवद्य बताया है।

(आशाधर ने 'सागारधर्मामृत' अध्याय ३ श्लोक ७ मे लिखा है कि—दर्शनिक श्रावक आपत्ति आने पर भी उसके निवारण के लिए शासनदेवतादि की कभी भी उपासना नही करता। सिर्फ पचपर -मेष्ठी की ही शरण ग्रहण करता है। (अर्हदादि पच गुरु चरणेपु

अन्तर्दृष्टि गम्य न शास्त्रानुलितोऽपि—दर्शनिकस्तन्निवृत्त्यर्थं शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते)

प्रतिष्ठासारोद्धार में भी आशाधर ने लिखा है:—

नाभेयाद्य धनव्यपार्श्वं विहितन्यासांसदाराधकान् ।
अव्युत्पन्नदृशः सर्वैहिकफल प्रातीक्ष्यार्चन्ति यान् ॥१२७॥
अध्याय ३

अर्थात्—(ऋषभादि तीर्थंकरों के दायें पार्श्व में स्थित और तीर्थंकरों के भक्त ऐसे शासन देवों को कमजोर श्रद्धा वाले नासमझ लोग ही लौकिक फलाकांक्षा से पूजते हैं।)

अव्युत्पन्नदृशो शासक दैहिक फलार्थिना ।
मंत्रबीजं प्रकाशार्थं मंत्रवादे स दर्शितः ॥४३॥
अध्याय ६

अर्थात्—(शासन देवताओं को प्रतिष्ठापना मंत्रबीज के प्रकाशनार्थ मंत्र शास्त्रों में ही बताई गई है इनकी उपासना तामसी लौकिक फलाकांक्षी जिन्हे सम्यक्त्व पैदा नहीं हुआ है ऐसे अविवेकी मनुष्य ही करते हैं।)

भगवत्कुन्दकुन्द ने मोक्षपाहुड में लिखा है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जोदु ।
लज्जाभयगारववो मिच्छादिट्ठी हवे सोहु ॥९२॥

अर्थात्—(भयादि से भी जो कुदेव कुधर्म कुगुरु की वंदना करता है वह मिथ्यादृष्टि होता है।)

इसकी श्रुतसागरी टीका में (यक्षादि को कुदेव के अन्तर्गत लिया है और उन्हें अवंद्य बताया है।)

सपरावेक्खं लिगं राई देवं असजदं वंदं।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी णहुमण्णइ सुद्ध सम्मत्ती।९३

अर्थात्—(कुगुरु, रागी देव और असयमी को जो वदनीय मानता है वह मिथ्यात्वी है शुद्ध सम्यक्त्वी नही।)

वृहद्द्रव्यसग्रह गाथा ४१ की ब्रह्मदेवजी कृत टीका मे लिखा है:—

"रागद्वेषोपहतार्तरौद्रपरिणत क्षेत्रपाल चडिकादि मिथ्या-देवाना यदाराधन करोति जीवस्त-द्देवमूढत्व न च ते देवा किमपि फल प्रयच्छति। कथमितिचेत्? रावणेन रामलक्ष्मण विनाशार्थं वहुरूपिणी विद्यासाधिता कौरवैस्तु पाडव निर्मूल-नार्थं कात्यायनी विद्या साधिता कसेन च नारायण-नाशार्थं वह्व्योऽपि विद्या साधिता। ताभि. कृत न किमपि रामपाडव नारायणना। तैस्तु यद्यपि मिथ्या देवता नानुकूलिता तथापि निर्मल सम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्वं निर्विघ्न जात मिति।

अर्थात्—रागीद्वेषी आर्त्तरौद्र परिणामी क्षेत्र पालादि मिथ्यादेवो की जो जीव आराधना करता है वह देवमूढ है। ये मिथ्यादेव कुछ भी लाभ नही पहुँचा पाते। यह कैसे? यह ऐसे कि—रावण ने राम-लक्ष्मण के विनाश के लिये वहुरूपिणी विद्या सिद्ध की, कौरवो ने पाडवो को खतम करने के लिये कात्यायनी विद्या सिद्ध की, और कस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये वहुत सी विद्याये सिद्ध की किन्तु वे विद्याये राम-पाडव-श्रीकृष्ण का कुछ भी विगाड नही कर सकी। इसके विपरीत राम-पाडव-श्रीकृष्ण ने इन मिथ्या विद्या देवताओ की कोई

आराधना नही की तो भी उनके निर्मल सम्यक्त्व और पूर्वकृत पुण्य से उनके सर्व कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो गये।

प्रश्न:—तव फिर शुभचन्द्रकृत पाडवपुराण के पर्व २० में अर्जुन द्वारा देवता की आराधना और उससे सहायता की प्रार्थना का वर्णन कैसे किया गया है ? देखो—

स्थितस्तत्र स धैर्येण दध्यौ शासनदेवतां।
आराधितो मया धर्मो जिनदेव सुसेवित ।८२।

गुरुश्च यदि प्राकट्य भज शासनदेवते।
इति ध्यायन् जिन चित्ते स्थितोऽसौ स्थिर मानस.।८३।

उत्तर.—इन श्लोको का पूरा अर्थ इस प्रकार है—

"अर्जुन वहा (चबूतरे पर) धैर्यपूर्वक बैठ गया और शासनदेवता को इस प्रकार सम्बोधन किया कि अगर मैंने धर्म का आराधन किया हो, अर्हन्त और गुरु की सेवा की हो तो तू प्रकट हो। फिर स्थिर मन से जिनेन्द्र का ध्यान करने लगा।"

इसमे शासनदेवता की कोई आराधना नही बताई है। आराधना तो धर्म की और सेवा अर्हन्त गुरु की तथा ध्यान जिनेन्द्र का बताया है। अर्जुन ने शासनदेवता से सहायता की भी याचना नही की है। आगे के श्लोक ८५-८६ मे बताया है कि शासनदेवता ने प्रकट होकर अर्जुन से कहा कि मैं तुम्हारी किंकर हू मेरे लिए जो आदेश हो वह बताओ।' इससे शासनदेवता अर्जुन की सेवक सिद्ध होती है अर्जुन उसका सेवक नही।

प्रश्न—पूज्यता सयम से होती है और देवगति मे सयम होता नही अत. सभी चतुर्णिकाय के देव अपूज्य है तो फिर

अग्नित्रय और निर्वाण क्षेत्रादि मे सयम हेतु न रहने पर भी पूज्यता कैसे है ? अगर यह कहा जाय कि महापुरुषो के ससर्ग १८ से अग्नित्रय और निर्वाण क्षेत्रादि पूज्य हो जाते है तो सदा तीर्थकरो के पास रहने वाले, जिनभक्त, जिनशासनरक्षक शासनदेव क्यो पूज्य नही ?

उत्तरः—यहा सचेतन से अचेतन की तुलना की गई है इससे विरोध विषमता पैदा हो गई है (पूज्यता मे सयम हेतु सचेतन (पचेन्द्रिय) की अपेक्षा से बताया है अचेतन (स्थावर) की अपेक्षा से नही) जिस प्रकार पत्थर की प्रतिमा अचेतन-असयमी होने पर भी प्रतिष्ठित पूज्य भगवान् हो जाती है। किन्तु कोई सचेतन-देव नारकी पशु गृहस्थ मनुष्य भगवान् पूज्य नही होता क्योकि अचेतन शुद्ध वस्तु मे ही सकल्प सद्भाव स्थापना होती है सचेतन (पचेन्द्रियादि अशुद्ध) मे नही । एक म्यान मे जैसे दो तलवार नही समाती उसी तरह शासनदेवो मे यक्षत्व (असयम) और पूज्यत्व [सयम[दोनो कभी नही रह सकते एक यक्षत्व ही रहेगा । सफेद कागज पर कुछ भी लिखा जा सकता है लिखे हुए पर नही । सोमदेव ने भी यशस्तिलकचम्पू मे लिखा है—सकल्पोऽपि दलफलोपला दिष्विव न समयान्तर प्रतिमासु विधेयः । यत —

---

१८ पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ।
सद्भिरध्युषिता धात्री सपूज्येति किमद्भुतम् ॥
कालायस हि कल्याण कल्पते रसयोगत ।

—क्षत्र चूडामणि (लम्ब ६)

इक्षो विकार रस पृक्त गुणेन लोके, पिष्टोऽधिक मधुरतामुपयाति यद्वत् ।
तद्वच्च पुण्य पुरुषै रुषितानि नित्य, जातानि तानि जगतामिह पावनानि ॥२१॥

—निर्वाणभक्ति (पूज्यपादकृत)

शुद्धे वस्तुनि संकल्प' कन्याजन इवोचितः
नाकारान्तर सक्रांते यथा पर परिग्रहे ॥२३॥

अष्टम आश्वास

[सकल्प पत्रफल पत्थरादि मे ही होता है दूसरो की प्रतिमाओ मे नही। जिस तरह कन्या ही मे पत्नी का सकल्प होता है क्योकि वह शुद्ध है दूसरो की विवाहिता मे पत्नी का सकल्प नही होता] इसी तरह पार्श्वनाथ की मूर्ति तो पूज्य मानी जाती है, किन्तु किसी मनुष्य देवादि को पार्श्वनाथ भगवान् मानकर नही पूजा जाता। लोक मे भी देखा जाता है कि किसी देश के राजा की मूर्ति [स्टेच्यू] बनाकर सम्मान करे तो राजा उस पर खुश होता है किन्तु किसी पुरुष को उस देश का राजा मानकर कोई राज्य व्यवहार करे तो वह राजा द्वारा दडनीय होता है ।

अग्नित्रय और निर्वाणक्षेत्रादि शुद्ध होने से उनमे तीर्थंकरो के ससर्ग से पूज्यता का प्रवेश हो जाता है किन्तु यक्षदेव पर्याय (असयमी) अशुद्ध होने से उनमे तीर्थंकरो के सानिध्य से भी पूज्यता नही आती यह तो द्रव्य-स्वभाव है इसमे कोई कुछ नही कर सकता। हीरे का पत्थर शाण पर चढाने से चमकदार रत्न हो जाता है किन्तु साधारण पत्थर लाख शाण पर चढावो कभी चमकदार रत्न नही होता ।

नवदेवो मे सजीव पञ्च परमेष्ठी अलग बताये है। और उनकी अचेतन मूर्ति तथा—मदिर अलग बताये है तीनो पूज्य बताये है किन्तु नवदेवो मे न तो कोई देवगति का देव बताया है और न उनकी कोई मूर्ति और मदिर बताये है अत शासनदेव साक्षात् हो चाहे उनकी कोई मूर्ति और उनका कोई मदिर हो

तीनो कभी भी पूज्य नही है। उनको पूज्य मानना जिन शासन की बगावत है।

पास मे रहने से जैसे नौकर मालिक नही होता अथवा गगा मे बहने से मछलिया और मगर पवित्र नही होते उसी तरह शासन देव भी पूज्य पवित्र नही होते। इसी तरह भक्ति और रक्षण हेतु मे भी कोई दम नही है यह तो तिर्यंच और मनुष्य भी करते है इसी से शासनदेवो को पूज्य माना जायेगा तो फिर तिर्यंच मनुष्य सभी पूज्य हो जायेंगे। अत किसी भी युक्ति प्रमाण से शासन देव पूज्य सिद्ध नही होते। उनकी पूज्यता के लिए आजतक जितने युक्ति और प्रमाण दिये गए हैं वे सब युक्त्याभास और प्रमाणाभास है—सब गलत और मिथ्या है।

प्रश्न—वसुनदिप्रतिष्ठासार संग्रह मे लिखा है—

नंद्यावर्त्तं प्रदीपं च दिशास्वष्टासु पूजयेत् ॥

अध्याय ६

कृत्वा महोत्सव तत्र पूजयेत् कुम्भ पंचक ॥३४॥

अध्याय ३

इनमे नद्यावर्त्त, प्रदीप और पचकु भो को पूजने की बात लिखी है यह कैसे ?

उत्तर—इन श्लोको के आगे लिखा ... स्थापन" इससे पूजन का तात्पर्य इन ... से है आगे के श्लोकों मे भी ... स्थाप्या' शब्दो के प्रयोग किये ...

मगलद्रव्यो को यथास्थान स्थापित करना ही उनका पूजन है। श्लोक ३४ मे पूजयेत् के स्थान मे 'पु जयेत्' पाठ भी सभव है जिसका अर्थ होगा—५ कलशो को (पचघटो को) एक जगह (एकत्र) रखे।

प्रश्न—महापुराण पर्व २४ मे आठध्वजाओ को जलगधादि द्रव्यो से पूजना वताया है देखो—

ततो द्वितीय पीठस्थान् विभोरष्टौ महाध्वजान् ।
सोऽर्चयामास संप्रीत पूतैर्गंधादिवस्तुभि ॥२०॥

यह कैसे ?

उत्तर—मूल मे जलद्रव्यो का वाची कोई शब्द नही है अतः जलादि अष्टद्रव्यो से ध्वजाओ को पूजना सिद्ध नही होता। मूल मे तो पवित्र गधादि (सुगधित) द्रव्यो से पूजना वताया है जिसका तात्पर्य यह है कि ध्वजाओ के पास सुगधित द्रव्य रखे गए जिससे वह स्थान सुरभित हो गया।

ध्वजा धर्मचक्रादि का अन्य रूप से भी पूजन सत्कार करे तो भी वह आपत्तिजनक नही है क्योकि ये तीर्थंकर की समव-शरण विभूति के अग होने से धार्मिक क्षेत्र मे आ जाते हैं अत समान्य समादरणीय हो जाते है।

प्रश्न—एक मुद्रित 'वसुविंदु प्रतिष्ठापाठ' है जिसे जयसेन प्रतिष्ठापाठ भी कहते है इनके कर्त्ता का सही नाम क्या है ? यह कितना प्राचीन ग्रन्थ है ?

उत्तर—इस प्रतिष्ठापाठ के अन्त मे लिखा है—

वासवेन्दुरिति प्राहुस्तदादि गुरवो मतः ।
जयसेन पराख्या मां तन्नमोऽस्तु हितैषिणा ॥९२६॥

इस श्लोक मे ग्रन्थकर्त्ता का नाम वासवेन्दु=वासवचन्द्र (वासव+इन्दु) दिया है यह सही नाम है वसुविन्दु जो प्रचलित नाम है वह अशुद्ध-गलत है। वासवेन्दु नाम योगीन्दु (योगिचन्द्र) कुमुदेन्दु (कुमुद चन्द्र) नामो की तरह उन्ही की शैली का चन्द्रान्त नाम है। वासवेन्दु का अपर नाम इस श्लोक मे जयसेन भी दिया है। इसी मे इस ग्रन्थ का नाम जयसेन प्रतिष्ठापाठ भी प्रसिद्ध है।

आशाधर ने अपने प्रतिष्ठापाठ के अध्याय २ मे 'महर्षि पर्युपासन, के अन्तर्गत दिगम्बर वासवेन्दु को भी अर्घप्रदान किया है देखो—

> प्रभाचन्द्रं रामचन्द्रं वासवेन्दु,मवाससं ॥ ११५॥
> मोरांग आतानर्घेण सर्वान् संभावयाम्यहं ॥ ११६॥

ये वासवेन्दु उक्त प्रतिष्ठापाठ के कर्ता ही ज्ञात होते हैं अतः ये आशाधर (१३वीं शती) से पूर्व के प्राचीन ग्रन्थकार हैं। ग्रन्थ की रचनाशैली बड़ी सुन्दर और प्रसादमयी है इस ग्रन्थ की शुद्ध प्राचीन हस्तलिखित प्रति की खोज होनी चाहिये।

भवनवासी, व्यंतर ज्योतिष्क ये ३ भवनत्रिक देव कहलाते हैं। शासन शासनदेव इन्हीं मे से हैं। त्रिलोकसार गाथा ८५० मे लिखा है कि—

जो जीव विपरीत धर्म पालते हैं, अग्निजलादि से मरते हैं, भोगाकांक्षा से धर्मासाधन करते हैं, कष्ट पूर्वक मरते हैं, पचाग्नि आदि कुतप करते हैं, सदोष चारित्र पालते हैं, वे इन भवनत्रिको में जन्म लेते हैं। (और वहा भी अपर्याप्त काल में तो [illegible]

तिलोयपण्णत्ती अध्याय ३ गाथा २०४ मे बताया है कि-

तीर्थंकर-सघ-आगमादि से प्रतिकूल मति रखने वाला दुर्विनयी, मायाचारी जीव किल्विप जाति के भवनत्रिको मे जन्म लेता है। सम्यक्त्वी जीव भवनत्रिको मे कभी जन्म नही लेता।

शासनदेवो को न पूजे तो कोई हानि नही है। जहा इनकी पूजा की गई है वहा भी विघ्न हुए हैं। और जहा इनकी पूजा नही की गई है वहा भी सव कार्य सिद्ध (सफल) हुए है तव फिर इनकी पूजा रूपी मिथ्यात्व के सेवन करने मे क्या लाभ और क्या समझदारी ? अर्थात् कुछ भी नही।

(विना पूजन नमस्कार किये ये शासनदेवता रक्षणादि नही करते हो ऐसी भी कोई वात नही है। ये तो सम्यक्त्वी व्रती पुरुषो के गुणो से आकृष्ट हो स्वय उनकी सेवा करते है यह इनकी ड्यूटी ही है। इनकी पूजा सेवा करना तो इन्हे रिश्वत देना है जो देने लेने वाले दोनो के लिये जिनशासन मे जुर्म है)

एक तरफ तो यक्षादिक को शासनदेवता-रक्षक माना जाता है और दूसरी तरफ इन्ही भूतप्रेत व्यतर नवग्रहादि के उपद्रवो की शाति के लिए शाति विधान किए जाते है। यह विडवना और परस्पर विरुद्धता कैसे ? इससे भी शासनदेव पूजा मे कोई तत्व (तत) सिद्ध नही होता इसी से विद्वज्जन-वोधक खड १ पृष्ठ २०९ से २१४ मे शासन देवो का आह्वान विसर्जन तो माना है किन्तु पूजन नमस्कार का निषेध किया है जो योग्य है।

फिर भी शासनदेवो को पूज्य और इनकी पूजा को विधेय माना जायेगा तो निम्नाकित आपत्तिया खडी होगी '—

(i) सौधर्मेन्द्र बना मुख्य पूजक अपने से हीन और किंकर भवनत्रिक देवो की पूजा कैसे करेगा ? तथा स्वय अपनी भी पूजा कैसे करेगा ?[१६]

(ii) तप-ज्ञान मोक्षादि कल्याणको मे इन्द्रादिदेव आते हैं समवशरण मे भी सब देव बैठे रहते हैं तब वहा तो इन्द्र ने शासनदेवतादि की पूजा कही की नही । प्रथमानुयोगादि किसी ग्रन्थ मे ऐसा नही लिखा है तव यहा ही उनकी पूजा कैसे सभव है ?

(iii) अगर देवदेवियो की पूजा का विधान ग्रन्थकारो को इष्ट होता तो वे अर्हत्पूजा के बाद इनकी पूजा का कथन करते अर्हत्पूजा के पूर्व नही ।

(iv) कल्याणक महोत्सव तो जिनेन्द्र का और सर्वप्रथम पूजा देवदेवियो की यह तो स्पष्ट ही विरुद्ध और असगत क्रिया

---

१६. इस आपत्ति का उत्तर यह दिया जाता है कि—"पूजा मे जो इन्द्र बना है वह स्थापना निक्षेप से है इसलिए वह यह भी नही भूल जाता कि—भावइन्द्र की पूजा मुझे करनी है ।" इस उत्तर मे 'सौधर्मेन्द्र अपने से हीन भवनत्रिक देवो की पूजा कैसे करेगा' इस आपत्ति का कोई उत्तर नही दिया गया है इसे छोड दिया गया है क्योंकि इसका कोई उत्तर ही सभव नही है । आपत्ति के दूसरे भाग का जो उत्तर दिया गया है वह भी ठीक नही है वह भी आपत्तिजनक है क्योंकि—भावइन्द्र चतुर्थ गुणस्थानी ही है और भावपूजक श्रावक पचम गुणस्थानी है । पचम (उच्च) गुणस्थानी भावइन्द्र (नीचे के गुणस्थानी) की कभी पूजा नही कर सकता । इस तरह इन्द्र भी चाहे भाव से हो चाहे निक्षेप से हो वह अपने से हीन देवो की और स्वय अपनी कभी भी पूजा नही कर सकता ।

है। यह तो "विवाह किसका और गीत किसके" इस कहावत को चरितार्थ करता है।

(v) इन्द्र के पास द्रव्यो की कोई कमी नही थी जो वह अर्हंत्पूजा के द्रव्य मे से ही इन देवदेवियो की पूजा करता। अगर उसे देवदेवियो की पूजा ही करनी होती तो वह अलग प्रवध कर.सकता था।

(vi) देवदेवियो के लिये जो "इद नैवेद्य गृहाण" (यह नैवेद्य ग्रहण करो) लिखा है सो जैनधर्म मे तो देवो के कवलाहार नही वताया है उनके तो मानसिक अमृत आहार वताया है। अत देवदेवियो को नैवेद्यादि ग्रहण कराना और वे नैवेद्यादि ग्रहण करते है (उपात्त वल्यर्चना ॥१०८॥ नित्यमहोद्योत, लब्धभागा यथाक्रम ॥ विसर्जनपाठ) ऐसा अर्थ प्ररूपित करना सिद्धान्त विरुद्ध और असगत है[२०]।

---

२० प्रति प्रश्न —अर्हन्त प्रभु भी कवलाहारी नही है तव उनके नैवेद्य क्यो चढाया जाता है ?
प्रत्युत्तर—न तो अर्हन्त को नैवेद्य ग्रहण कराया जाता है और न किसी शास्त्र मे ऐसा लिखा है कि—वे नैवेद्य ग्रहण करते हैं। "क्षुधारोग विनाशाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा" यह मत्र वोलकर अर्हन्त के सामने नैवेद्य चढाया जाता है। इसमे नैवेद्य क्षुधा की तृप्ति के लिये नही है किन्तु क्षुधा के नाश के लिए है वह भी गृहाण (ग्रहण करो) इस रूप मे नही है किन्तु निर्वपन (त्याग) रूप से है। अर्थात् पूजक अपने क्षुधा रोग के नाश के लिए जिनेन्द्र के सामने नैवेद्य का निर्वपन-त्याग करता है। इसमे जिनेन्द्र के साथ नैवेद्य आदि का कोई सवध नही है वे तो सिर्फ एक तरह से साक्षी रूप मे हैं।

जिस तरह पायजामा के उपयोग से अजानकार पाजामा के दोनो हिस्सो को पैरो मे न डालकर हाथो मे डाल ले और शेष भाग को कमर मे न डालकर गले मे डाल के बाध ले वही उलटी हालत आज अनेक क्रिया काडो के सही विधान को नही समझने के कारण हो रही है। इससे परस्पर विसवाद बढ रहे है और शास्त्रो मे अनेक असगतियां, पूर्वापरविरुद्धता एव अप्रमाणता उत्पन्न होकर जैनाचार्यों के कथनो पर अश्रद्धा बन रही है। यही हालत शासनदेव-पूजा के सम्बन्ध मे है। शासनदेवों को अर्घसमर्पण का अब तक ठीक सुसंगत अर्थ ग्रहण न हो पाने से ही इस विषय मे भी अनेक विसवाद और असगतिया प्रवर्त्तमान हैं अत हमने जो पूर्व में शासनदेव पूजा का रहस्यार्थ (शासनदेवो द्वारा अर्हत्पूजा यानि देवताओ का आह्वान और उन्हे अर्घसमर्पण जिनपूजार्थ ही होता है) बताया है उसे ग्रहण करने पर किसी भी प्रकार की कोई भी आपत्तिया कतई नही उत्पन्न होती। और सब कथनो की सहज सगति होजाती है। इससे 'न साप मरे न लाठी टूटे' वाला काम हो जाता है। एव सब विसवाद समाप्त हो जाते है और इस विषय मे प्राय. किसी ग्रन्थ को अप्रमाण करने की भी जरूरत नही रहती। जिन शास्त्रो मे शासनदेव-पूजा लिखी है अब तक उन शास्त्रो को अप्रमाण मान कर शासनदेव पूजा का निषेध किया जाता रहा है किन्तु हमने इस निबन्ध मे उन शास्त्रो को अप्रमाण करार न करके उन शास्त्रो के रहस्यार्थ को प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

जैसे शास्त्रो को अप्रमाण करने का प्रयत्न 'चर्चा सागर' (पाडे चपालाल जी कृत) मे भी किया गया है वहा पृष्ठ ५ मे रविषेण कृत पद्म पुराण को काष्ठासघी और अमान्य बताया है इसी

तरह पृष्ठ ४८२ मे पाडे रूपचन्द कृत पच मगल को भी काष्ठा सघी और अमान्य बताया है। इस सबध मे पृष्ठ ४४४ मे लिखा है कि—इन जैनाभासो के ग्रन्थ सम्यग्ज्ञानियो को श्रद्धान करने योग्य नही है।

कुछ भाई यह सोचते है कि–दूसरे धर्मो के कुदेवो को नही पूजकर अपने धर्म के कुदेवो को पूजा जाय तो क्या हानि है ? किन्तु यह सोचना बहुत ही भूलभरा है क्योकि जहर दूसरो के घर का खावो चाहे अपने घर का खावो वह तो मृत्यु को ही प्राप्त करायेगा। इनके सिवा शास्त्रो मे यह नही बताया है कि—अमुक देव तो जिन शासन के हैं और अमुक देव अन्य शासन के किन्तु सब ही जिनशासन के ही बताये है।

जैनधर्म मे शिथिलाचार और मिथ्यात्व[२१] को कोई स्थान नही है क्योकि नाव मे छोटा सा भी छिद्र हो जाने पर उससे

---

२१ मिथ्यात्व को प्रथम गुणस्थान मे माना है इससे वह गुण-कोटि मे आता है फिर उस का निषेध क्यो ? उत्तर-मिथ्यात्व वास्तव मे गुण रूप नही हैं उसे पुद्गल की अपेक्षा से जीव का गुण माना हैं। जीव की अपेक्षा तो वह सब अवगुणो की जड है उसके रहते जीव मे कोई गुण प्रस्फुटित नही हो सकते उसका मोक्ष मार्ग ही बद ही जाता है उससे बढ कर जीव का कोई शत्रु नही है। दूसरी बात यह है कि—जिस तरह सोना खान से अशुद्ध ही निकलता है उसी तरह इस जीव के साथ भी शुरू से ही मिथ्यात्व लगा रहता है वह एक तरह से जीव की मूल प्रकृति रूप हो जाने से जड की अपेक्षा गुण मान लिया गया है वस्तुत वह जीव का मल और विकार ही है। उसके हटाने पर ही जीव मे धर्म का प्रारभ होता है।

धीरे-धीरे पानी भर कर नाव ही डूब जाती है उसी तरह छोटी सी भी शिथिलता आगे भयकर रूप धारण कर लेती है।

अपनी धुरी से डिगने पर मनुष्य को अनेक सकट उठाने पडते है जैसे—लक्ष्मणरेखा से वाहर निकलने पर सीताजी का हरण हुआ और रामचन्द्रजी व रावण मे महान् युद्ध हुआ जिसमे असख्य प्राणी मारे गये।

अत जिस तरह क्षुधानिवृत्ति के लिए कोई भी समझदार जहर नही खाता और भ्रष्ट ग्रन्थो के कथन से विष्टा ग्रहण नही करता उसी तरह विवेकियो का कर्त्तव्य है कि—वे भी किसी भी दृष्टि से शासनदेव पूजा रूप मिथ्यात्व का कभी सेवन नही करें।

अन्त मे विद्वानो और पाठको से प्रार्थना है कि—वे इस निवध पर पूर्ण गंभीरता के साथ विचार करने की कृपा करे और उन्हे यह उचित एव उपयोगी प्रतीत हो तो वे इसका प्रचार प्रसार करे।

इस विपय मे किन्ही को किसी भी प्रकार की शका उत्पन्न हो तो वह इस निवध को आद्योपान्त पुन· पढने का कष्ट करे उनकी शका का समाधान इसी मे से उन्हे स्वत हो जायेगा फिर भी कदाचित् समाधान न हो तो वे हमे लिखकर पूछ सकते हैं हम तत्काल उन्हे उत्तर देंगे।

उपासना नैव विना विवेकं ।
विनागमं नैव विवेकभानुः ।
ततो विवेकाय सदागमाना ।
रहस्यलाभे सततोद्यमी स्याः ॥

यथाखरश्चंदन भारवाही, भारस्यवेत्ता न तु चन्दनस्य ।
तथा हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य, सारं न जानन्खरवद्वहेत्सः ॥

इति शम् ।

॥ श्री ॥

शास्त्र-मर्म

●

१– ण हु सासण भत्तीमेत्तएण सिद्धं त जाणगो होइ।
ण हु जाणगोत्ति णियमा पण्णवणा-णिच्छिदो णाम ॥ ३-६३

(शासन मे भक्ति होने मात्र से कोई सिद्धान्त का ज्ञाता नही हो जाता तथा ज्ञाता होने मात्र से कोई प्रज्ञापना मे यथार्थता को प्राप्त नही हो जाता)

२– सुत्त अत्थणिमेण ण सुत्तमेत्तेण अत्थ पडिवत्ती।
अत्थ गदी पुण णय वाद गहण लीणा दुरधि गम्मा ॥ ३-६४

(यद्यपि सूत्र ही अर्थ का आधार है किन्तु मात्र सूत्र से अर्थ-प्रति पत्ति = सत्यार्थ निश्चय नही होता क्यों कि—अर्थ की गति नयवाद रूपी बीहड मे लीन है अत (जन साधारण के लिए शास्त्र का रहस्य) दुर्बोध है)

३– तम्हा अहिगद सुत्तेण अत्थ संपादणम्मि जइयव्व।
आयरिय-धीर हत्था हंदि महाण विडबेंति ॥ ३-६५

(इसलिये सूत्र—पाठी को सूत्रो के सत्यार्थ सपादन मे यत्न करना उचित है। आचार और विवेक से भ्रष्ट ही जिन-शासन को दूषित करते हैं '— पडितैर्भ्रष्टचारित्रैर्बठरैश्चतपोधनै, शासन जिन चन्द्रस्य निर्मलं मलिनीकृत)

४– परवत्तव्वय पक्खा अवि सिद्धा तेसु तेसु सुत्तेसु।
अत्थ गइए दु तेसिं विअजणं जाणगो कुणइ ॥ २-१८

(उन आगम सूत्रो मे कही कही परमतवक्तव्यपक्ष भी ग्रथित है विशेषज्ञ ही अर्थ—गति के द्वारा उनका प्रकाशन (रहस्योद्घाटन) करते है, अन्य नही) —सन्मति सूत्र (सिद्धसेनाचार्यकृत)

५– अस्त्रधारणवद् वाह्ये, क्षेत्रे हि सुलभाः नराः।
यथार्थ ज्ञान सपन्ना, शौण्डीरा इव दुर्लभाः ॥

(वाहर मे शस्त्रास्त्र धारण करने वालो की तरह थोथे क्रिया काड मे सलग्न पुरुष तो सुलभ हैं किन्तु युद्ध वीरो की तरह यथार्थ ज्ञानी जन ससार मे दुर्लभ हैं) — यशस्तिलक चम्पू (सोमदेव कृत)

V. Good

इस निबंध पर आगत कुछ—

अभिमत

१. केकडी के श्री कटारिया की विशेषता यह है कि—वे ग्रन्थो को अमान्य ठहराने की अपेक्षा उनका आर्ष वचनानुसार अर्थ करके दूध का दूध और पानी का पानी कर देते है।

शासनदेवो की पूज्यता और अपूज्यता को लेकर विवाद समाज मे नया नही है और अब तक परिपाटी यह रही है कि—जिन ग्रन्थो मे शासनदेवो की पूजा का विधान है उन्हे भट्टारक-प्रणीत कह कर अमान्य घोषित कर देना। श्री कटारिया उन ग्रन्थो की मान्यता को सुरक्षित रखते हुए उनके शास्त्र-सम्मत अर्थ निकालने मे सिद्धहस्त है। यह विशेषता उन्हे अपने स्व० पिताजी से विरासत मे मिली है। श्री कटारिया के तर्कों पर विद्वान् निष्पक्ष रूप से विचार करे।

वैसे यह तो समन्तभद्र आदि के ग्रन्थो से हस्तामलकवत् स्पष्ट ही है कि—सच्चे देवशास्त्र और गुरु के अतिरिक्त अन्यो की पूजा सम्यग्दृष्टि के लिये निषिद्ध है।

—प० **भंवरलाल पोल्याका,** जैन दर्शनाचार्य

प्रधान सम्पादक—"महावीर जयती-स्मारिका" ७५ जयपुर-३

(महावीर जयती स्मारिका ७५ पृष्ठ ४-२१ से उद्धृत)

२ महावीर जयती स्मारिका ७५ (जयपुर से प्रकाशित) को पलटते आपका शोधपूर्ण 'शासनदेव पूजा रहस्य' लेख पढा। बडा आनंद आया। आपको इस विशुद्ध ज्ञानाभ्यास के लिए कोटिश. बधाई।

—प्रा० **खुशालचंद्र गोरावाला,** काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२

३ आपका लेख—"शासनदेव पूजा रहस्य" जो महावीर जयती स्मारिका ७५ मे छपा है, मिला।

नि सदेह लेख शास्त्रीय प्रमाणो से युक्त है और सयत भाषा मे लिखा गया है विचारको के लिये उसमे पर्याप्त सामग्री है। किन्तु दुर्भाग्य है कि—समाज मे जो ढला-चला चला आरहा है, उस पर ही चला जारहा है। विवेकपूर्ण जागृति नही के बराबर आई है।

—प० **दरबारीलाल कोठिया**, वाराणसी-५
अध्यक्ष—श्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्

४ आपका 'शासनदेव पूजा रहस्य' निबध तर्क सगत है। आज ऐसे लेखो के प्रचार की आवश्यकता है।

—प० **बंशीधर शास्त्री**, अहमदाबाद

५ 'शासनदेव पूजा रहस्य' लेख की कॉपी मिली, उत्तम लेख है।

—प० **पन्नालाल साहित्याचार्य**, सागर
मत्री—श्री भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्

६ 'शासनदेव पूजा रहस्य' लेख मिला। लेख बहुत अच्छा है। सप्रमाण है। मैं उसे पूरा पढ गया हू वह सम्बद्ध है। आपका परिश्रम सराहनीय है और आम्नाय का सरक्षण भी हुआ है। लोगो की धारणा सुधरेगी।

—प० **परमानद शास्त्री**, दिल्ली

७ 'शासनदेव पूजा रहस्य' लेख मिला, हमने पढा है। इसमे प्रश्न—उत्तर आदि शास्त्राधार देकर विवेचन किया है जो बहुत ही उपयोगी है। आपने अच्छा सग्रह किया है।

—ब्र० **हीरालाल खुशालचन्द दोशी**, फलटण (महाराष्ट्र)

८. आपका 'महावीर जयती स्मारिका' में प्रकाशित—"शासन देव पूजा रहस्य" नामक लेख मिला। उसमे आपने प्रश्न तथा उत्तर रूप मे उचित और योग्य समाधान किये हैं। तथा प्रचलित मत्र विधि आदि का शास्त्र समत एव उचित अर्थ निकालकर—सच्चे वीतरागदेव के अतिरिक्त कोई भी पूजनीय नही इसका अच्छा स्पष्टीकरण किया है। लेख पढ़ कर प्रसन्नता हुई। आपका प्रयास अभिनंदनीय है।

—पं० श्रीपाल शिवलाल शहा, कोल्हापुर

९. 'शासनदेव पूजा रहस्य' पुस्तिका मिली। आपके सन्मति ज्ञान को धन्यवाद! सम्यग्दृष्टिजीवो की यही पहचान है। मिथ्यात्व को ही मोटा पाप श्री गुरु ने बतलाया है। आप सच्चे जिनवाणी के सुपुत्र हैं। मिथ्यात्व का प्रचार दिनो दिन बढ रहा है, दि० धर्म के रक्षक ही भक्षक हो रहे हैं। फिर भी आप जैसे धर्मात्मा सच्ची बात का प्रचार कर रहे है यह बहुत हर्ष और संतोष की बात है, किताब पर कीमत नही। नही तो ५० किताब मंगाकर मैं बांटता।

—पं० प्रेमराज दोशी, अजमेर।

॥ श्री ॥

आभार प्रदर्शन

★

इस पुस्तक के प्रकाशन में निम्नांकित महानुभावो ने इस प्रकार आर्थिक सहयोग प्रदान किया है:—

१,	श्री दि० जैन समाज, वारा (कोटा-राजस्थान) (मारफत प० दीपचन्द जी पाड्या, केकड़ी)	३०१) रु
२.	श्री प० प्रेमराज जी डोसी, अजमेर	५१) रु.
३.	श्री मास्टर रूपचन्द्रजी गगवाल, सिराणा	३१) रु
४.	श्री राजमल जी पदमकुमार जी लुहाड़िया, रामगज मंडी	५१) रु
५.	श्री मगनलाल जी हरकचन्द जी कटारिया, विरदपुरा	५[illegible]
६.	श्री सुदरलाल जी जैन अग्रवाल, वमूदनी	५१) रु
७.	मास्टर सा० श्री प्रकाशचन्द जी जैन, ब्यावर	११) रु
	कुल योग—	५४७) रु.

एतदर्थ इन सब सद्धर्म-प्रेमी दानी सज्जनो को
अनेकश: धन्यवाद !